Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VI ISSUE-XII DECEMBER 2019 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 5.707 ISSN 2349-638x

'गेंद' कहानी के बहाने वृद्ध-विमर्श

डॉ. बालाजी श्रीपती भुरे
अध्यक्ष ,हिन्दी विभाग
शिवजागृति वरिष्ठ महाविद्यालय, नलेगांव
ता. चाकुर जि. लातूर।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में चर्चित एवं मेधावी प्रतिभा की धनी लेखिका चित्रा मुद्गल का जन्म 10 दिसंबर 1944 को चेन्नई में हुआ। उन्होंने मुंबई के सोमैया कॉलेज से इंटरमीडिएट किया और एम. ए. हिंदी एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय से किया। चित्रा मुद्गल के पिता का नाम ठाकुर प्रताप सिंह और माता का नाम विमला देवी था। पिताजी शिकार के शौकीन और सामंती संस्कार के व्यक्ति थे, तो माता सीधी-सादी घरेलू महिला थी। चित्रा जी का विवाह हिंदी साहित्यकार अवध नारायण मुद्गल के साथ हुआ। अवध नारायण ब्राह्मण थे, तो चित्रा जी ठाकुर थी। अतः चित्रा जी के परिवार वालों को यह अंतरजातीय विवाह मंजूर नहीं था। बावजूद इसीके चित्रा जी ने अवध नारायण के साथ विवाह किया। चित्रा जी के व्यक्तित्व पर गोरकी, टॉलस्टॉय, प्रेमचंद, रविंद्रनाथ टैगोर, मात्मा गांधी आदि के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने जो भी देखा, भोगा या अनुभव किया, उसे अपनी गहरी जनसंवेदनाओं के साथ अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने निरंतर कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, बाल साहित्य आदि विधाओं पर लेखन कर हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत आधुनिक काल में जहाँ दलित- विमर्श, स्त्री- विमर्श, किसान- विमर्श, बाल- विमर्श का बोलबाला है, वहाँ वृद्ध- विमर्श पर भी नए सिरे से चिंतन हो रहा है। हिंदी साहित्य में विविध साहित्यकार अपनी-अपनी दृष्टि से अपनी रचनाओं के माध्यम से वृद्धों के प्रति अपने चिंतन को प्रस्तुत कर रहे हैं, उनमें से एक चित्रा जी है। आज भारतीय समाज में वृद्धों की तरफ परिवार में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है। जिन्होंने अपना पूरा जीवन खून पसीना एक कर अपने बच्चों को पाला पोसा,पढाया-लिखाया, बडा किया उसे नौकरी लगाई। लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, तब वे अपने ही माता-पिता की उपेक्षा करने लगते हैं। इस उपेक्षा के पीछे भौतिकवादी युग में बढता स्वार्थ और पैसों की लालसा रही है। आज अपने विकास के पीछे दौड़ता हुआ युवक अपनी संस्कृति, अपनी भूमि, अपना परिवार और अपने ही रिश्तो ं से कटते जा रहा है। आज हर एक रिश्तों में खोकलापन आते जा रहा है। परिणाम स्वरूप परिवार में अपने बच्चों द्वारा माता-पिता के प्रति उपेक्षा और संवेदनहीनता का भाव दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है।

चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानी 'गेंद' में वृद्धों के जीवन में आ रही उपेक्षा से उत्पन्न पीड़ा एवं विपदाओं के साथ-साथ बच्चों के प्रति माता-पिता की लापरवाही का भी चित्रण किया है। इस कहानी को समझने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर हमें चिंतन करना होगा। जैसे -

भौतिकवादी युग का प्रभाव :-

आज भौतिकवादी युग में प्रत्येक मनुष्य विकास के पीछे दौड़ रहा है। उसकी यह दौड़ कभी न समाप्त होने वाली दौड़ है। इस दौड में स्वयं को आधुनिक मानकर वह आर्थिक समृद्धि की लालसाओं में अपने परिवार से कटते जा रहा है , दूर होते जा रहा है, यह आज के युग की विडंबना है। इस भौतिकवादी युग में वृद्ध विमर्श को अभिव्यक्त करने वाली यह 'गेंद' कहानी नौकरी से रिटायर्ड सचदेवा के जीवन की पीड़ा को बयान करती है। सचदेवा नौकरी से रिटायर एक वृद्ध पिता है ,जिनका पुत्र विनय नौकरी के लिए इंग्लैंड चला गया और वहीं शादी करके बस गया। पिता के अंतिम वर्ष ठीक से बीते इसलिए उन्होंने पिता की व्यवस्था वृद्धाश्रम में तो कर दी लेकिन पिता के प्रति अपने पारिवारिक स्नेह और भावनिक साहचर्य को लेकर कभी सोचा नही। वृद्धाश्रम में बिस्तर से

लगे बुजुर्गों को टट्टी पेशाब करानेवले मनेसुर का यह कहना कि," एक तो हम कर में पाँव दिये इन बूढ़े- बुढियों को माई-बाप कबूल कर तन- मन से इनकी सेवा टहल करें, ऊपर से इनका भस्मासुरी क्रोध झेलें। कोई पूछे इनसे, तुम्हारे अपने जाये तो तुम्हारा हगना-मूतना उठाने को राजी नहीं। जो उठा रहे उन्हीं को रेतने को तुम तरिया रहें ?"1 यह वृद्धों की स्थिति को दर्शाता है। चित्रा मुद्गल जी ने इस कहानी में भौतिकवादी युग के चपेट में आयी मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त किया है, जिसके चंगुल से न वृद्धव्यक्ति बचा है, न छोटा बच्चा।

पारिवारिक साहचर्य का अभाव :-

' साहचर्य ' से तात्पर्य है सहचारिता, मेल - मिलाप, मित्रता या सहगमन का भाव । अर्थात एक साथ स्नेह से मिलकर रहने या जीवन जीने का भाव। इस दृष्टि से समाज का प्रत्येक मनुष्य चाहे वह बच्चा हो या वृद्ध अपनी बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था में अपने परिवार से भावनिक साहचर्य मिलने की अपेक्षा रखता है। खासकर वृद्ध पिता अपने बच्चों से यही अपेक्षा रखता है कि, वह उसे प्रेम दें, भावनिक आधार दे, लेकिन आज वृद्ध पिता की यह अपेक्षा अपने ही बच्चों द्वारा चूर - चूर होती जा रही है। कहानी में एक ओर वृद्ध सचदेवा अपने बेटे विनय को पढ़ा लिखा कर बड़ा करते हैं और जब बेटा बड़ा होकर विदेश जाता है , वही शादी करके बस जाता है। ऐसे समय वह अपने पिता की व्यवस्था वृद्ध आश्रम में कर देता है। पिता सचदेवा अपनी वृद्धावस्था में अपने परिवार से स्नेह तथा भावनिक साहचर्य पाना चाहते थे लेकिन आज अपने बच्चों द्वारा हो रही अपनी उपेक्षा से पीड़ित हैं। जब छोटा बच्चा नई गेंद लाने के लिए सचदेवा को कहता है और सचदेवा उसे गेंद लाकर देने की बात करते हैं , तब बच्चे के कहनेपर कि नई गेंद ? आप मुझे नई गेंद लाकर देंगे? तब सचदेवा का कहना कि," इसमें अचरज की क्या बात है। दादा जी अपने पोते को नई गेंद नहीं खरीद कर दे सकते ?"2 यह सचदेवा का बच्चों के जरिए पारिवारिक साहचर्य के अभाव की पूर्ति करने को दर्शाता है। वह बच्चे के साथ घुल मिल जाते हैं, उसे अपनी पोती के रूप में देखते हैं। तो दूसरी ओरएक छोटा सा बच्चा भी अपनी मां की उपेक्षा का शिकार है। बच्चे की मां डॉक्टर होकर भी डिस्पेंसरी जाते समय अपने बच्चे को घर में बंद कर देती है ताकि वह आस-पास के बच्चों के संपर्क से बिगड़ न जाए। बच्चा अकेला घर में घुटन महसूस करते रहता है। मां ने कभी यह नहीं सोचा कि बच्चे की मानसिकता पर अकेलेपन से और अपने साहचर्य के अभाव से क्या बीतती होगी ? ऐसी स्थिति में वृद्ध सचदेवा और वह छोटा बच्चा पारिवारिक साहचर्य के अभाव की पूर्ति एक- दूसरेके साहचर्य से करते हैं।

पात्रों की प्रातिनिधिकता :-

किसी भी कहानी का प्रभुत्व या श्रेष्ठत्व उस कहानी में आए पात्रों की प्रतिनिधिकता पर आधारित होता है। इस दृष्टि से इस कहानी में आए पात्र आज की विशिष्ट मानसिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहानी के वृद्ध पिता सचदेवा और छोटा बच्चा पारिवारिक उपेक्षा और भावनिक साहचर्य से पीड़ित मानसिकतावाले पात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो सचदेवा का बेटा,बहू और छोटे बच्चे की मां जो डॉक्टर हैं, ये सभी भौतिकता के पीछे भाग कर अपनों की ही उपेक्षा करने वाली संवेदनहीन मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। दुर्भाग्य यह है कि ऐसी मानसिक प्रवृतियां हमारे समाज मेंदिन- ब- दिन बढती जा रही है।

कहानी का पात्र विनय विदेश में जाकर बस गया है। उसकी पत्नी डॉक्टर है, बावजूद इसके वह अपने ससुर सचदेवा की बीमारियों का इलाज तक नहीं करती ऐसी कठिन विपदा में सचदेवा को अपनी पत्नी राजूल की याद आती है। उनका यह सोचना कि," राजूल जिंदा थी, तो उन्हें कभी अपनी फिक्र नहीं करनी पड़ी नित नए नुस्खे घुट घुट कर पिलाती रहती। करेले का रस, मेथी का पानी, जामुन की गुठली की फंकी और न जाने क्या-क्या"3 यह बेटों द्वारा हो रही उपेक्षा या संवेदनहीनता को व्यक्त करता है।

समदुखियोंकी मानसिकता :-

' गेंद ' कहानी में लेखिका ने यह बताने का प्रयास किया है कि एक दुखीव्यक्ति दूसरे दुखी व्यक्ति के साथ कैसे जुड़ जाता है। कहानी में वृद्ध सचदेवा और छोटा बच्चा दोनों पारिवारिक उपेक्षा और साहचर्य के अभाव से पीड़ित है। दोनों समदुखी हैं इसीलिए दोनों भावनिक साहचर्य से एक दूसरे के साथ जुड जाते हैं । जब बंद मकान की कंपाउंड के अंदर अकेलेपन से त्रस्त बच्चा अपनी खोई हुई गेंद खोजने की

प्रार्थना सचदेवा से करता है, तब बच्चे से सारी बातें सुनकर सचदेवा अपनी तुलना उस बच्चे से करते हैं । दोनों को समदुखियाँ होने का अनुभव होता है इसीलिए दोनों एक-दूसरे के करीब आते हैं,भावनिक साहचर्य और अपनेपन की भावना से जुड़ जाते हैं।

वृद्धाश्रम की बढ़ती संख्या :-

संयुक्त परिवार, भावनिक साहचर्य, एक दूसरे के प्रति समर्पण का भाव, त्याग की भावना आदि भारतीय संस्कृति की विशेषताएं हैं। लेकिन आज आधुनिक काल में भौतिकवादी प्रभाव से और वैश्वीकरण से इन सभी रिश्तों एवं नैतिक मूल्यों में दरार आ रही है यह चिंता का विषय है। आधुनिक काल में बच्चों द्वारा हो रही उपेक्षा से एक ओर वृद्ध माता-पिता चिंतित हैं,तो दूसरी ओर माता-पिता की असंवेदनशीलता एवं उपेक्षा से बच्चे भी पीडित हैं। बच्चों का माता-पिता के प्रति उपेक्षा का भाव ही आज वृद्धाश्रम की बढ़ती संख्या के लिए प्रमुख कारण बन गया है। वृद्धाश्रम में माता-पिता को रखकर बच्चे अपनी नैतिक जिम्मेदारी से छुटकारा पाना चाहते हैं और अपनी इच्छा के अनुरूप मुक्त जीवन जीना चाहते हैं जो परिवार की नींव पर ही प्रहार है। जिन्होंने बचपन से बच्चों को पाल पोस कर बड़ा किया, उन्हें जीवन जीने योग्य, काबिल बनाया उन माता-पिता की स्थिति वृद्धाश्रम में क्या होगी ? इसके बारे में बेटे कभी नही सोचते । वे यह तनिक भी विचार नहीं करते कि आज जिस प्रकार माता-पिता के साथ हम बर्ताव कर रहे हैं, क्या कल अपने बेटे अपने प्रति ऐसा ही बर्ताव नहीं करेंगे ? बच्चों की इसी अपूर्ण सोच ने वृद्ध आश्रम को बढ़ावा दिया है। परिणाम स्वरूप वृद्धाश्रम को लेकर समाज ही नहीं सरकार भी चिंता दिन- ब - दिन बढ़ती जा रही है।

शीर्षक की सार्थकता :-

कथानक और उसकी मूल संवेदना की दृष्टि से इस कहानी का शीर्षक पूर्णतः सार्थक लगता है । शीर्षक की सार्थकता यही है कि पारिवारिक स्नेह और भावात्मक साहचर्य की 'गेंद' आधुनिक परिवेश के मैदान में न जाने कहां गुम हो गई है, जिसे ढूंढने का प्रयास हर एक व्यक्ति कर रहा है, लेकिन उस गेंद का मिलना मुश्किल है। इस गेंद का मिलना तभी संभव है जब मनुष्य पुनः भावनिक साहचर्य से अपने परिवार के साथ जुड़ जाए और कभी भी अपने परिवार के सदस्यों के प्रति उपेक्षा न करें।

निष्कर्ष :-

चित्रा मुद्गल जी ने 'गेंद' कहानी के माध्यम से पाठकों को यह सोचने के लिए विवश किया है कि, आनेवाली पीढ़ी के लिए हम किस प्रकार के संस्कार रखते जा रहे हैं। आज हम जिन वृद्ध माता-पिता की उपेक्षा कर रहे हैं, क्या कल हमारे बेटे अपनी उपेक्षा नहीं करेंगे ? 'जैसी करनी वैसी भरनी' इस परिणाम को जानते हुए भी हम बेगाना सा जीवन क्यों जी रहे हैं ? यह एक चिंतन का विषय है। इस कहानी से कुछ निष्कर्ष बिंदु हमारे सामने आते हैं। जैसे -

- आज इस आधुनिक युग में पारिवारिक,सामाजिक मूल्य टूटते जा रहे हैं।
- परिवार में वृद्ध माता - पिता की अपने ही बच्चों द्वारा हो रही उपेक्षा चिंता का विषय बन गया है।
- पारिवारिक भागदौड और पति- पत्नी के बीच बढ़ते तनाव से छोटे बचे भी माता- पिता द्वारा हो रही उपेक्षा के शिकार बनते जा रहे हैं।
- परिवार का आपसी स्नेह और भावनिक साहचर्य दिन - ब - दिन कम होता जा रहा है।
- परिवार एवं समाज में वृद्ध एवं बच्चों के प्रति मानवीय संवेदना खत्म होती जा रही है।
- पारिवारिक स्नेह और भावनिक साहचर्य के अभाव से वृद्धाश्रम की बढ़ती संख्या परिवार, समाज और सरकार के लिए बहुत बडी समस्या बन गयी है।

इस प्रकार आज के युग में न वृद्धों का जीवन सुरक्षित है न बच्चों का। बच्चें और वृद्ध दोनों भावनिक साहचर्य और पारिवारिक उपेक्षा इन दो पाटों के बीच बुरी तरह से पीसते जा रहे हैं। यह कहानी परिवार में बच्चों द्वारा वृद्धों की बढ़ती हुई उपेक्षा को प्रस्तुत करती है। इस समस्या से निजात पाने के लिए हमें समय पर हम में परिवर्तन लाना होगा। हमें अपनेपन और भावनिक साहचर्य के साथ परिवार और समाज के साथ बर्ताव करना चाहिए।

संदर्भ सूची:-

1) संपा. डॉ. बालाजी भुरे,डॉ. व्यंकट पाटील - कहानी संकलन - सं. 2019, दिव्य डिस्ट्रिब्युटर्स,कानपुर - पृ. 69
2) संपा. डॉ. बालाजी भुरे,डॉ. व्यंकट पाटील - कहानी संकलन - सं. 2019, दिव्य डिस्ट्रिब्युटर्स,कानपुर - पृ. 69
3)संपा. डॉ. बालाजी भुरे,डॉ. व्यंकट पाटील - कहानी संकलन - सं. 2019, दिव्य डिस्ट्रिब्युटर्स,कानपुर - पृ. 66
4) संपा. डॉ. बालाजी भुरे,डॉ. व्यंकट पाटील - कहानी संकलन - सं. 2019, दिव्य डिस्ट्रिब्युटर्स,कानपुर - पृ. 64

डा. भीमराव अम्बेडकरः अछूतोद्धारक

डा. श्वेता जैन
अंशकालिक प्रवक्ता
जे0ए0वी0 गर्ल्स पी0जी0 डिग्री कालिज,
बडौत जनपद बागपत

सारांश

दलितों को जागृत करने, स्वावलम्बी बनाने, शिक्षित करने, संगठित करने, अपनी जडता को मिटाने में अगर किसी ने सक्षम बनाया तो वह है डा0 भीमराव अम्बेडकर।

डा0 अम्बेडकर का जीवन भारत के शोषित, पीडित एवं दलित समाज के लिए ही नही बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के शोषितों के लिए प्रेरणा का श्रोत रहा। सैकडों सालों से जाति की जंजीर में बंधे करोडो दलित डा0 अम्बेडकर को मसीहा कहते थे। जाति की सीढी के सबसे निचले पायदान पर खडे लोगों की नजर में बाबा साहिब किसी देवता से कम नही थे। छुआछूत के आडम्बरों से त्रस्त दलितों के लिए वे सबसे बडे मुक्तिदाता थे।

मूल शब्द : दलित शब्द का अभिप्राय, मूक नायक मराठी पाक्षिक पत्र, दलित वर्ग– सामाजिक स्वतंत्रता एवं समानता, कौरेगाव युद्ध स्मारक

भारतीय समाज वर्ण और जाति के सिद्धान्तों पर आधारित है इसका उल्लेख मनुस्मृति[1], भीष्म के शांतिपर्व एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र के साथ–साथ पाणिनी के अष्टाधायी में भी मिलता है। वर्णव्यवस्था के अनुसार ब्राहमणों का कार्य पठन पाठन यज्ञ और हवन और देवपूजा आदि था तो क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा एवं दान देना था वैश्यों का कार्य कृषि, व्यापार, उत्पादन करना एवं दान देना था शुद्रों का कार्य सेवा करना था। यही परम्परा पीढी दर पीढी चलती रही और इस परम्परा का पालन करते–करते समाज में सेवक तथा मालिक का भाव उत्पन्न हो गया। ''दलित शब्द आक्रोश, चीख, वेदना पीडा, चुभन, घुटन और छटपटाहट का प्रतीक है।[2]

दलित वर्ग समाज का निम्नतम वर्ग होता है और विभिन्न आर्थिक अवस्थाओं में विभिन्न नामों से यह जाना जाता रहा। दासप्रथा में दास, सामन्ती व्यवस्था में कृषक, पूंजीवादी समाज में सर्वहारा वर्ग, दलित वर्ग के नाम से जाना गया। दलित शब्द में कौन सी जातियाँ आती है इस प्रश्न का समाधान डा. शरण कुमार लिम्बाले ने किया ''दलित'' केवल हरिजन और नव बोध नही गांव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक कष्टकारी जनता और यायावार जातियाँ सभी की सभी दलित शब्द से व्याख्यायित होती है।''[3]

सर्वप्रथम डा.अम्बेडकर ने ही दलितों को उनके अधिकार दिलाने उनका कल्याण करने के लिए आन्दोलन किया। उनका जन्म इसी वर्ग में हुआ था। उन्होंने पग–पग पर अछूत होने के कारण अपमान का कडवा जहर पीया था। समाज में व्याप्त भेदभाव विषमता और अपमान की आग में तपकर डा0 भीमराव अम्बेंडकर एक ऐसा कुन्दन बन गए जिसने यह साबित किया कि कर्मठता, आत्मबल और स्वाभिमान के द्वारा समाज की इन रूढियों का सामना किया जा सकता है, अपना जीवन श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। बाबा साहिब ने दलित वर्ग को ललकारते हुए कहा कि अपनी कमजोरियों से हमे स्वयं लडना है ''सज्जनों, हम कहते है हमारी स्थिति खराब है और दूसरे लोग हमारे साथ बुरा बर्ताव करते है, हमारे साथ अन्याय हो रहा है ये सभी बातें सच है लेकिन हम इस अन्याय से खुद को कैसे निकाले? हम कब चतुर और बुद्धिमान होंगे? हमारे बुद्धिमान या सक्षम न होने के पीछे बाहरी ताकतों या जातियों अथवा हिन्दुओं वगैरह का हाथ नही है। यदि ऐसा है भी तो ऐसा नही है कि हम अपनी ताकत से इन कारणों से पार नही पा सकते। कोई भी उतना खराब खाना नही खा सकता जिसे खाने के लिए हम मजबूर है। लेकिन क्या हमारे लोगों ने कभी शिकायत की।''[4]

डा. अम्बेडकर ने दलित वर्ग की हर छोटी से छोटी समस्या का गहराई से अध्ययन किया उनका एकमात्र उद्देश्य था कि दलितों का उद्वार स्वयं दलितों द्वारा होना चाहिए और वे स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होने चाहिए। उनका मानना था कि छुआछूत, जाति पाँति, अमानवीय भेदभाव पूर्ण व्यवहार के पीछे के मूल कारणों का पता लगाये बिना आन्दोलन सफल नही हो सकता। अछूतोद्वार के उनके इस आन्दोलन में सर्वाधिक सहयोग प्रदान किया कोल्हापुर के छत्रपति साहू महाराज ने, उन्होने अपनी रियासत में अछूतवर्ग के कल्याण के लिए कई योजनाएं चला रखी थी जैसे शिक्षा योजना जिसमें

अछूतों को शिक्षित करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही थी।

अछूत छात्रों को आवास, भोजन, वस्त्र उपलब्ध कराए जा रहे थे। डा. अम्बेडकर ने साहू महाराज को एक अखबार निकालने की अपनी योजना बताई। उनके सहयोग से ही 31 जनवरी 1920 को 'मूकनायक' नामक मराठी पाक्षिक पत्र प्रारम्भ किया गया! इसके संपादक महार जाति के 'श्री पांडू रंग भटकर' थे। इस पत्रिका के माध्यम से अम्बेडकर ने हिन्दू समाज की बुराईयों पर कडे प्रहार किए। उन्होंने एक लेख में स्पष्ट किया ''कि हिन्दु समाज एक ऐसी मीनार के समान है, जिसमें अनेक मंजिले है पर उनमें प्रवेश के लिए कोई द्वार नही है। व्यक्ति उसी मंजिल में दम तोडेगा जिसमें वह पैदा हुआ है।''[5] डा. अम्बेडकर दलित वर्ग की सामाजिक स्वतंत्रता एवं समानता की जोरदार वकालत कर रहे थे उनका मानना था कि अपने ही समाज के लोगों के साथ नीचता का व्यवहार करने के कारण ही हिन्दु समाज पतन के गर्त में जा धंसा था। मई 1920 में नागपुर में गठित दलित समाज की नवनिर्मित अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद की सभा में उन्होने अपना यह मंतव्य इन शब्दों के द्वारा प्रकट भी कर दिया '' दलित समाज की प्रगति में बाधक कोई भी संस्था या व्यक्ति चाहे वह दलित समाज का हो, चाहे स्वर्ण हिन्दु हो उस पर तीव्र निषेध किया जाना चाहिए''[6]

डा.अम्बेडकर स्वयं को अपनी अंधी जनता के हाथ की छडी कहते थे उनका कहना था कि यदि लोग इस छडी के सहारे चलना जारी रखेंगे तो धूर्त लोगों द्वारा बिछाए गये जाल में कभी नही फसेंगे। उनके समय में गैर ब्राहमण एवं अछूत ब्राहमणों की भ्रष्ट बौद्धिकता एवं घमंडी मानसिकता के समक्ष आत्म सर्मपण करते आये थे। दलित ब्राहमणों से डरते थे लेकिन बाबा साहेब के चेताने पर ये दोनों सम्प्रदाय अपनी गलती समझ चुके थे बाबा साहब कहते थे कि यदि ये दोनों समुदाय एक हो जाए एवं अपनी प्रगति के लिए स्वयं प्रयास करे तो सवर्ण लोगों की गुलामी से मुक्ति पा जायेंगे ।

कोलाबा जिले के महाड पुरसभा के अहाते के तालाब से जल लेना हो या गणेशोत्सव समिति में निम्न जाति को प्रवेश दिलाना हो, बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना हो या गांधी जी का सामना करना हो डा. अम्बेडकर एक मजबूत स्तम्भ की तरह दलित वर्ग के लिए खडे रहे। कोरे गांव युद्ध स्मारक की बैठक में उनका संबोधन हृदय विदारक व ऐतिहासिक रहा। उन्होंने श्रोताओं से कहा ''उनके समुदाय के सैकडों लडाकुओं ने अंग्रेजों की तरफ से लडाई लडी थी, लेकिन खेदपूर्ण है कि उन्ही ने बाद में उन्हे 'गैर सैन्य समुदाय' घोषित किया। चूंकि हिन्दू जाति ने उनसे अछूतों और घृणितों जैसा व्यवहार किया और उनके पास जीविका का कोई साधन नही था। इसीलिए आखिरी विकल्प के तौर पर वे ब्रिटिश फौज में शामिल हुए थे। डा.भीमराव अम्बेडकर ने दलितों का आहवान किया कि वे अंग्रेजी सरकार की इस नीति के खिलाफ आंदोलन करें ताकि अंग्रेज सरकार ने दलितों पर सैन्य सेवा में प्रवेश पर जो प्रतिबंध लगाए है वो वापिस लिए जाए।

मंदिरों में प्रवेश करना ही दलितों के लिए उस समय एकमात्र समस्या नही था। उच्च शिक्षा एवं रोजगार का अभाव, अस्पृश्यता का व्यवहार, दलित समाज की भीरूता भी उनके पिछडेपन का कारण थी।

1 मार्च 1933 को बम्बई की एक सभा में दलित वर्ग के भाइयों का आहवान करते हुए उन्होने कहा कि ''तुम्हे अपनी दासता स्वयं मिटानी है उसके अंत के लिए ईश्वर या अतिमानव पर निर्भर मत रहना। आपकी मुक्ति राजनीतिक शक्तियों में निहित है न कि तीर्थ स्थानों या उपवासों में। शास्त्रों में विश्वास के कारण तुम्हे दासता, अभाव एवं गरीबी से छुटकारा नही मिलेगा।''[8]

उन्होने मनुस्मृति दहन (1927), महाड सत्याग्रह (1928) नासिक सत्याग्रह (1930), येवला की गर्जना (1935) जैसे आंदोलन चलाएं और उनके विचारों को मूकनायक, बहिष्कृत भारत, समाज, जनता और प्रबुद्ध भारत नामक पत्र–पत्रिकाओं ने ध्वनि प्रदान की। अपने जीवन के 65 वर्ष उन्होंने दलितों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक विकास को समर्पित कर दिए।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति के अध्याय–1 से 31 श्लोक में कहा गया कि संसार के कल्याण के लिए ब्रहमा ने अपने मुँह, हाथ, जांघो और पैरों से क्रमशः ब्राहमण क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र को जन्म दिया।
2. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधरा– माता प्रसाद पृष्ठ–1
3. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र– पृ.–38 डा. शरण कुमार लिम्बाले
4. मराठी भाषण, मुम्बई प्रांतीय बहिष्कृत वर्ग का सम्मेलन (तीसरी मीटिंग, निपानी, जिला बेलगांव (11 अप्रैल 1925) मराठी ब्यौरा बी.ए. डब्ल्यू.एस. भाग–18 (1) पृ0–25–31
5. डा. अम्बेडकरः जीवन और आदर्श– पृष्ठ 46 रामलाल विवेक
6. तत्रैव पृष्ठ–47
7. मराठा भाषण, कोरेगांव युद्ध स्मारक मे बैठक, पुणे के पास कोरे गांव (1 जनवरी 1927), अंग्रेजी रिपोर्टः कीर, बी,ए, डब्ल्यू. एस. भाग–17 (3) पृ.–3–7
8. डा. अम्बेडकर : जीवन और आदर्श पृ.–113 राम लाल विवेक

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

VOL- VI ISSUE-XII DECEMBER 2019 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 5.707 | ISSN 2349-638x

रामरदश मिश्र के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण

शोधार्थी
राजकुमार अर्जुनराव बिरादार
महाराष्ट्र उदयगिरी महाविद्यालय,
उदगीर जि.लातूर

शोध-निर्देशक
डॉ.संजय गडपायले
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
माधवराव पाटील महाविद्यालय,
पालम जि.परभणी

भूमिका

कथानक के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो है वह पात्र-योजना, पात्र-सृष्टि या चरित्रण-चित्रण का होता है। उपन्यासों की मूल संवेदना उसके चरित्रों के माध्यम से ही प्रकट होती है। वस्तु: उपन्यास की कथावस्तु को गति प्रदान करना यह चरित्रों का ही कार्य होता है। उपन्यास में कथानक उपन्यास का मेरुदण्ड है तो चरित्र चित्रण उसका प्राण है। उपन्यास यह मनुष्य के यथार्थताओं से बना एक घर है। इसी कारण प्रत्येक उपन्यास में पात्रों का होना अनिवार्य है। चाहे वे कम हो या जादा हो, धनी हो या निर्धन हो, बुद्धिमान हो या मुर्ख, स्थिर हो या गतिमान हो, सम हो या विषम हो, बिना पात्रों के उपन्यासों की कल्पना करना व्यर्थ है।

उपन्यास साहित्य में पात्रों का विशेष महत्त्व है। उपन्यासकार एक परिवेश जीता है। समाज में लोगों के साथ रहता है। और उसी खुबियों एवं खामियों का चित्रण उपन्यासकार उसे अपने उपन्यासों के लिए पात्र देता है। उपन्यास में आनेवाले पात्र जीवंत होते है। सामान्यत: उपन्यास यह मानव-जीवन का ही चित्रण करता है। उसमें लेखक जो कुछ प्रस्तुत करता है, वह किसी-न-किसी रूप में मानव जीवन से सम्बन्धीत होता है। जैसे-घटना प्रधान हो या चाहे वातावरण प्रधान हो उनका संबंध किसी ऐसे तत्त्व से होता है, जो पात्र के रुप में प्रकट होते हैं। उसे ही पात्र या चरित्र कहते है। चरित्र-चित्रण या पात्रों के माध्यम से ही उपन्यासकार अपनी जीवनुभूति को ही अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

पात्र-सृष्टि एवं परिभाषा

उपन्यासकार अपनी रचना को विशेष सुन्दर, परिपूर्ण बनाने के लिए पात्रों का चित्रण उपन्यास में करता है। उपन्यास अपने आप में एक सृष्टि है। इस सृष्टि में न जाने कितनी घटनाएँ घटती है। इन घटनाओं के जन्मदाता है उपन्यास सृष्टि के पात्र। उपन्यास के पात्र इसी संसार की मिट्टी से बने होते है। चरित्र-चित्रण से तात्पर्य है पात्र या मनुष्य के व्यक्तित्व का आंतरिक या बाह्य स्वरूप। जैसे-आचार-विचार, वेष-भूषा, आकार-प्रकार, रहन-सहन, बोल-चाल आदि कार्य या निजी ढंग पात्र में बहुत कुछ प्रतीत करते है। उपन्यास में व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष के अध्ययन ने चरित्र के उपन्यासों को जन्म दिया है।

पात्रों की परिभाषा

१) प्रेमचंद के अनुसार-

"उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र कहा है। मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[१]

२) प्रदीपकुमार शर्मा के अनुसार

"कहानी में जो घटनाएँ होती है या घटना विहीन उपन्यासों में, जहाँ मानसिक घटनाएँ या मानसिक, संसार की रचना होती है, पात्र या चरित्र कह सकते है।"[२]

३) मनोविश्लेषक फ्रॉम के अनुसार-

"प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र एवं व्यक्तित्व पर उस व्यक्ति के परिवार, समाज, वर्ग, संस्कृति का प्रभाव पडता है। इन सबका मिश्रित प्रभाव उसके चरित्र और व्यक्तित्व को एक ऐसा रूप देता है, उसे विभिन्न प्रतिक्रियाओं को प्रभावी ढंग से करने के योग्य बनता है। उसके प्रत्येक व्यवहार में सामाजिक वर्ग और सांस्कृतिक की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। व्यक्ति के इस प्रकार निर्मित को फ्रॉम ने 'सामाजिक चरित्र' की संज्ञा दी है।"[३]

४) डॉ.मक्खनलाल शर्मा के अनुसार

"उपन्यास में कोई कहानी होती है। उस कहानी में कुछ घटनाएँ होती है। वे घटनाएँ जिनसे सम्बन्धीत होती है या जिनको लेकर उन घटनाओं का घटीत होना दिखाया जाता है, वे पात्र कहलाते है।"[४]

इस तरह उपन्यास में चरित्र-चित्रण कितना महत्त्वपूर्ण होता है। उपन्यास में वस्तुजगत के व्यक्तियों के चरित्र को उपन्यासकार अपने उद्देश्य, दृष्टिकोण तथा कथा की विशिष्ट योजना के अनुकूल बनाने के लिए विशिष्ट पात्रों का स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषा विवेचनों के

आधार पर यह कहा जा सकता है कि पात्र या चरित्र-चित्रण उपन्यास का प्रमुख तत्त्व है।

रामदरश मिश्र के उपन्यासों में आदर्शवादी पात्र

रामदरश मिश्र का उपन्यास 'पानी के प्राचीर' का नायक नीरु यह एक आदर्श पात्र के रुप में दिखाता है। नीरु गरीबी के कारण से उपन्यासकार ने देश, समाज के सभी गरीब मजदूर एवं किसानों की गरीबी का वर्णन किया है। नीरु बचपन से ही नये समाज निर्माण की भावना रखता है। नीरु अपने परिवार को गरीबी से मुक्त कराने के लिए जमींदार राय साहब के यहाँ नौकरी करता है। वहाँ लाचारी और गरीबी का खून शोषण होता है। नीरु यह देखकर राय साहब के यहाँ की नौकरी छोड देता है। नीरु के साथ प्रकृति भी रोती हुई सी लगती है-''खेत रो रहे है। उसका दिल भी रो उठा। नौकरी-नौकरी उसके दिमाग को चाट रही थी।... हुरदेव राय की नौकरी... दो महिने में दस रुपये... दगाबाजी, चोरी... मजुरों का गला काटना... यह सब नहीं हो सकता मुझसे।''[५] इस तरह नीरु राय साहब के यहाँ की नौकरी छोड देकर वह दुसरी नौकरी राजेन्द्र बाबू के यहाँ करता है। यहाँ जमींदार गाव समाज के किसानों का शोषण बडी सफाई से करता है। नीरु की गरीबी में पुरे समाज की गरीबी दिखाई देती हे। नीरु को अपने ही परिवार जैसे गरीब उन झोपडियों के किसान लगते है। ''इन किसानों के घर पर से टुटती हुई एक अर्धनग्न नारी है, जवानी के भार से नाती और अभावों के श्रृंगार से बोझिल एक बेटी है, टूटी मठैया के नीचे एक बडे पेट वाला एक लडका छटपटाकर रो रहा है। आह... उसे घर की याद आ गई... माँ...केशव...लीला,पिता, गरीबी...गरीबी...गरीबी...।''[६]

नीरु के इस प्रकार के संघर्ष को देखकर नीरु के प्रति एक सहानुभूति हो जाती है। इस तरह नीरु और संध्या के प्रेम-प्रसंग को पढकर भी हमारे सामने नीरु एक आदर्श रुप में प्रस्तुत करता है। वह अनेक कष्ट सहकर परिवार का पालन-पोषण करता है। अतः हम यह कह सकते है कि नीरु यह एक मेहनती, कर्तव्यनिष्ठ, मातृ-पितृ भक्त, आज्ञापालक, ईमानदार, आदर्श भाई, गाव का हित देखनेवाला एवं एक सच्चा प्रेमी आदि कई रुपों में हमें नीरु एक आदर्शवादी पात्र के रुप में दिखाई देता है।

रामदरश मिश्र का दूसरा उपन्यास 'जल टूटता हुआ' का एक आदर्श पात्र सतीश यह हमें बहुत प्रभावित करता है। सतीश भी नीरु की तरह तिवारी से हो रहे अन्याय-अत्याचार के प्रति आवाज उठाता है। सतीश समाज में हो रहे यातना को झेलता है। गाँव की गरीबी को देखकर सोचता है। वह बामन, हरिजन, मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग के लोग सभी भूख और गरीबी के चक्के में बुरी तरह पीस रहे है। सतीश मजदुरों के लिए अदालत में जाता है। शोषकों के विरोध में मुकदमा दायर करता है। और वह मुकदमा भी जीत जाता है। इस तरह सतीश सोचता है-''इस इलाके के बामन, हरिजन, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग सभी भूख और गरीबी के चक्के में बुरी तरह पिस रहे हैं।''[७] इस तरह सतीश अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाता है। सतीश यह सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त होकर गाँव को अधिक अधिक खुशहाल व समृद्धशाली देखना चाहता है। लेकिन भरकस प्रयासों के बावजूद अन्त में वह टूटकर रह जाता है। सतीश जो आजादी के बाद के जो सपने उसने देखे थे वे पुरे नहीं हो सके। वह अपने दीर्घकालीन संघर्ष की निष्फलता को हरिजन नेता जग्गू से कहता है-''मैंने जो भोग रहा हूँ, भोग रहा हूँ लेकिन चिन्ता इस बात की है कि गाँव का क्या होगा? हम तुम आज है, कल नहीं रहेंगे, लेकिन इस गांव का क्या होगा? ऐसे ही अनेक गावों का क्या होगा?''[८]

इस तरह सतीश अपने गाव के लिए एक आदर्श बनता है। वह संवेदनशील, संघर्षशील, व्यक्तिगत होनी के लाभ के प्रति वह पुरी तरह उदासीन समाज सेवक आदि प्रकार से वह हमारे सामने एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

'अपने लोग' उपन्यास का नायक प्रमोद एक आदर्श वादी पात्र का रूप प्रस्तुत करता है। प्रमोद अपने लोगों से दूर रहकर भी पास रहता है। प्रमोद के घर के लोग भी मुसीबत में प्रमोद को ही याद करते है। परिवार से समय-समय पर पैसे और छोटे भइयों के परिवार पर आई मुसीबतों में आर्थिक सहाय्यता के लिए बार-बार प्रमोद से ही पैसे माँगते हे। इस प्रकार प्रमोद अपने परिवार के साथ घिरा रहता है। ''इतना होने पर भी इन लोगों को झेलते जाने के लिए मैं अपने आपको मजबूर क्यों पाता हूँ, उन्हें झटककर फेंकर क्यों नहीं देता। यही तो मेरी मजबुरी है।''[९]

इस प्रकार रामदरश मिश्र के उपन्यासों में आदर्शवादी पात्र के रुप में जैसे-'सूखता हुआ तालाब' का नायक देव प्रकाश यह भी अपने गाँव के अन्याय-अत्याचार को विरोध करकर आदर्श बन जाता है। उपन्यास 'रात का सफर' में ऋतु अपने पति दिनेश को छोडकर समाज जीवन को सफल तो नहीं कह सकते लेकिन उसने अपने साहस का परिचय दिया और उसी साहस का आधार मानकर वह आगे के जीवन में संघर्ष करके ही सफलता प्राप्त कर सकेगी यह कहा जाता है कि ऋतु पाठकों की दृष्टि में एक आदर्श संघर्षशील नारी के रूप में सफलता प्राप्त कर सकेगी। 'बीस बरस' की 'वंदना', 'थकी हुई

सुबह' की 'लक्ष्मी', 'बिना दरवाजे का मकान' की 'दीपा' यह अपने जीवन का नया मार्ग खोजती हुये आदर्श स्थापित करती है।

इस तरह के पात्र रामदरश मिश्र के उपन्यासों में आदर्श के अंतर्गत प्रमोद, शील, यश, शंकर, डॉ.गौतम, असलम, शोभा आदि पात्र आदर्शवादी यथार्थ पात्र लगते है।

संदर्भ

१) यशपाल के उपन्यासों में चित्रित पात्रों का स्वरूप विश्लेषण-डॉ.विजयकुमार जाधव, साहित्य सागर, कानपूर, सं.२००५, पृ.सं.१२४
२) राजेन्द्र अवस्थी का कथा साहित्य-डॉ.भाऊसाहेब मा. परदेशी, साहित्य निलय, कानपूर, प्रथम संस्करण २०००, पृ.सं.१७७
३) श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्प विधान-डॉ.पी.वी. कोटमे,चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपूर,प्र.सं.२००४, पृ.सं.१२६
४) हिंदी उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा-डॉ.मक्खनलाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.१९६५, पृ.सं.४६
५) पानी के प्राचीर-रामरदश मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, तृ. सं.२००८, पृ.सं.१४१
६) वही, पृ.२०६
७) जल टूटता हुआ--रामरदश मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.२००४, पृ.१६
८) वही, पृ.१६
९) अपने लोग-रामदरश मिश्र, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सं. २००६, पृ.३१५

जनसंचार का सशक्त माध्यम 'हिंदी' सिनेमा

डॉ. शिवाजी सांगोळे
सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग प्रमुख
मोरश्वर महाविद्यालय भोकरदन जि. जालना

मनोरंजन, लोक जागृति के साथ जीवन के प्रत्येक भाग को अभिव्यक्त करनेवाला सिनेमा वर्तमान युग का एक सशक्त माध्यम है। सन 1912 में दादासाहब फालके न भारत में प्रथम बार 'राजा हरिचन्द्र' सिनेमा की निर्मिती की और वे इसके अध्येयता बने। उस समय पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सुधार, स्वातंत्रता, आंदोलन, देश विभाजन पर आधारित फिल्में बनती थी। आज पुरी तरह परिस्थिती बदल गई है उसके अनरूप महंगाई, भ्रष्टाचार, बेकरी, कालाबाजार, रिश्वतखोरी, महिलाओं पर होने वाले अत्याचार जैसे विषयों पर फिल्में बन रही है। फिल्म दृश्य-श्रव्य माध्यम और जनसंचार का प्रभावी माध्यम है। फिल्म के माध्यमसे लोगों का मनोरंजन और संदेश को अच्छि तरह पहुँच सकता है। फिल्म की कथा दृश्य को स्पर्श करती है। इसमें कलात्मक रूप से सृजनात्मक लेखन की योग्यता सबसे अधिक सहायक होती है। इस क्षेत्र में रोजगार की संधियाँ है जैसे पटकथा लेखक, फिल्म निदेशक, अभिनेता,अभिनेत्री, श्रृव्य निदेशक,गीतकार आदि, इसके लिए जनसंचार में डिग्री, अभिनय शिक्षा , हिंदी में अकदमिक योग्यता और ईश्वर प्रदत्त शक्ति होना आवश्यक है। "दुनिया में भारत का बॉलिवुड मुंबई फिल्म उद्योग में प्रथम स्थान रखता है। मुंबई के अतिरिक्त चैन्नई में भी फिल्मों का निर्माण होता है।" (१) फिल्म निर्माण एक सांसारिक उत्पाद होते हुए भी बडा उद्योग है। इसका प्रमुख उद्देश्य पैसा कमाना है तो रोजगार का भी है। फिल्मोंमे समाज एंव देश का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। फिल्मों का प्रयोजन केवल मनोरंजन ही नहीं देशहित एवं समाज सुधार भी होता है। कुछ वर्ष से हिंदी फिल्मों की भाषा को लेकर नाक-भौ सिकुडने का सिलसिला भी चल रहा है, लकिन बाजार को इसकी परवाह नहीं होती थी। "हर तरह भाषा की प्रयुक्ति को मानक साहित्यिक भाषा के मानों से तौलने की अतिवादी प्रवृत्ति समीचीन नहीं होती। माध्यम विधाओं और उनकी भाषा की प्रकृति को देखकर उसके विकास में योगदान देना हमारा दायित्व है।" (२) फिल्मों व्दारा हिंदी की लोक प्रियता सातवें आसमान में पहुँची है। फिल्मों के विदेशो के राईट्स भारत के राईट्स से ज्यादा राशि प्राप्त कर रहे है। सिनेमा का कथानक सिर्फ प्यार ही नहीं रहा बल्कि देश भक्तिपर अनेक फिल्में बनी। जिसमें माँ तुझे सलाम, द लीजेंड ऑफ भगतसिंह, मंगल पांडे, आनंद मठ, रंग दे बसंती, तिरंगा जैसी फिल्मों को लोगों ने दिलो जान से चाहा। हिंदी फिल्में प्रसिध्दि की कगार पर खडी थी। हिंदी सिनेमा से सिर्फ हिंदी भाषी लोग ही प्रभावित नहीं हुए बल्कि अहिंदी भाषा लोगों के दिलों पर हिंदी सिनेमा आज भी राज कर रहा है। बच्चों बच्च्यो के जुबान पर हिंदी सिनेमा के सवांदो ने अपना प्रीभाव रखा है। इस तरह सिनेमा के प्रचार और प्रसार में सहायक रहा है। सिनेमा के पात्रों के अनुसार भाषा में दृष्टिगत होता है जैसे - मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस. ने टपोरी भाषा को देखते है। समय के साथ सिनेमा और भाषा में परिवर्तन आता रहा है। यह परिवर्तण समाज ने स्वीकृत किया है। जिसके चलते आज भी हिंदी सिनेमा की माँग और प्रभाव बढ रहा है।

भारतीय फिल्मों का हिंदी भाषा को अपनाने का कारण यह था कि हिंदी जन-जन की भाषा है। वह जनभाषा होने के कारण सारे भारत में बोली समझी जाती है। हिंदी भाषाने हिंदी सिनेमा को भारत के कोने-कोने में पहुँचाया। उसी प्रकार फिल्मों ने भी हिंदी को जन-जन तक पहुँचाया एस,तडवी इस संदर्भ में लिखते है -" फिल्मों में हिंदी को चुनना इस बात का प्रमाण है कि हिंदी सभी भारतीय भाषाओं में अधिक उर्जावान, सरल, सुबोध,सुगम तथा आम जनता से शीघ्र जुडने वाली भाषा है।" (३) हिंदी का प्रचार -प्रसार में फिल्मों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फिल्मों ने हिंदी को जनता की जबान पर स्थापित करने का, उनके दिल को जीत ने का महत्वपूर्ण काम किया र्है
आजादी मिलने पर हिंदी के विकास की कमान संभाली हिंदी सिनेमा ने देशभक्ति सामाजिक परिवेश, धार्मिक भावनाओं और पारिवारिक समस्याओं से ओतप्रोत हिंदी में बनी फिल्मों ने सारे समाज पर आसर डाला। इन हिंदी सिनेमा ने हिंदी पसंद करने

वाले दर्शक वर्ण की संख्या में वृध्दि की। हिंदी भाषा में लिखे मधुर गीत सारे देश भर में छाये रहें। सिनेमा की लोकप्रियता के कारण उसने इस भाषा को पूरे देश की संपर्क भाषा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हम यह कह सकते है कि औद्योगिक विकास ने हमें एक उभरता हुआ नया मध्यवर्ग दिया है। जो अपनी मनोरंजन की तलाश में लगा है। ऐसे में सिनेमा ने अलग-अलग प्रयोग किए है। भाषा के नये आयामों से परिचित करवाया है। कमलेश्वरजी का कहना है कि ''हम एक जीवंत और विकसित होती भाषा के वारिस है। मैने फिल्मों से लौटने का रास्ता नहीं खोला बल्कि फिल्मों में जाने और टिकने का रास्ता बनाने की कोशिष की, अपनी भाषा के गौरव के साथ''(४) कमलेश्वर कला फिल्म की कहानियों का काफी बडा हिस्सा रह चुका है।

सिनेमा की भाषा साहित्य की भाषा से अलग होती है। सिनेमा की भाषा वह है जिसे निर्देशक कैमरे की आँखों से अभिव्यक्त करता है। कैमरे का एंगल, गति मुवमेंट्स अभिनय, रंग, ड्रेस, लोकेशन सिनेमा की भाषा के प्रमुख अंग है। संवाद भी इसका हिस्सा होतो है। साहित्य में जो बात पन्ने-पन्ने रंग कर कही जाती है। सिनेमा वह बात कुछ दृश्योंके माध्यमसे चुटकियों में कह जाता है। हिंदी सिनेमा देश-दुनिया का सशक्त लोकप्रिय जनसंचार का माध्यम हे। विश्व के हर देश राज्य में सिनेमा का बोल बोला रहा है। अनेक भाषाओं में सिनेमाओं का निर्माण हुआ है। सिनेमा जगत का एक लंबा इतिहास है। ऐरिक जास्टने के अनुसार ''सिनेमा वर्तमान समाज में संवहन का सर्वाधक प्रीभावशाली माध्यम है। जैसा की यह शिक्षा और आंतरराष्ट्रीय सद्भावनाओं की बढोतरी का सबलतम साधन है। यदि कहा जाता है कि एक चित्र एक सहस्त्र चित्रों से ज्यादा गुणवान है'' (५) विश्व की हर संस्कृती,रहन,सहन,समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों पाखंड, अंधविश्वास, पारिवारिक जीवन, राजनीति, भ्रष्टाचार, दबंगगिरी, अन्याय अत्याचार नानाविध विषय को लेकर फिल्में बनाई जा रही है। हिंदी सिनेमा जगत ने अनके विषय को लेकर अपना अस्तित्व अजमाया है। भारतीय समाज परिवार शहर के घर घर में सिनेमा जगत की काफी चर्चा चलती है। आज सिनेमा के माध्यमसे हिंदी भाषा घर घर पहुँच गई है।

हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं के प्रखर प्रवक्ता के रूप में व्हि शांताराम, देवकी, बोस, विमलराय मास्टर विनायक, महबूब ख्वाजा, अहमद अब्बास आदि निर्देशक सामने आये। भारतीय समाज में सिनेमा जगत ने एक असीम छाप छोड दी है। आज भी अनेक फिल्म के गीत सुप्रसिध्द इतिहास के पन्नों पर हिट हुए है। लता मंगेशकर व्दारा गाया हुआ हिंदी फिल्म का गीत 'ये मेरे वतन के लोगों' व्दारा भारतीय नौजवान सैनिकों के कार्यो का परिचय करवा देता है। ऐसे एक नहीं अनेक सिनेमा फिल्मों के गीतों के माध्यमसे पाठशाला, उत्सव, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन, विश्वविद्यालयों के जरिए समाज परिवर्तन के लिए हिंदी सिनेमाओं का सहारा लिया जाता है। आज फिल्म मीडिया एक सशक्त माध्यम बन चुका है। '' सिनेमा तकनीक का श्रेय थॉमस अल्वा एडीसन को जाता है।'' (६) जॉर्ज इस्ट मैन ने सैल्यूलाईट फिल्म का अविष्कार किया। हिंदी भाषी क्षेत्र हो या अहिंदी भाषी हर कोने में हिंदी सिनेमा पहुँच चुका है। हिंदी भाषा में समाज के हर वर्ग के हिसाब से देश, कला, वातावरण की हिसाब से हर किस्म की फिल्में रिलीज हुई है। सिनेमा का अविष्कार 28 दिसम्बर 1885 को ल्युमियर बन्धुओं व्दारा किया गया। जिसे आधुनिक फिल्म जगत का पितामह कहा जाता है। सुचना प्राद्यौगिकी क्रांति ने तो सिनंमा जगत में नई तकनीकी का सहारा लिमा जा रहा है।

सिनेमा जनसंचार माध्यम का सबसे सषक्त माध्यम है। संचार माध्यम की पहली शर्त यह होती है कि वह ऐसी भाषा को अपनाएँ जिसे अधिक से अधिक लोग जानते, समझते और बोलते है। ऐसी एक मात्र भाषा हिंदी थी। इस कारण फिल्मी उद्योग ने हिंदी को अपना लिया। हिंदी फिल्मों के कारण ही तो हिंदी कश्मीर से कन्याकुमारी तक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। संवाद की भाषा बनी। भूमंडलीक रण के युग में हर वस्तु का मूल्यांकन उनकी उपयोगिता पर होता है। जिस भाषा की उपयोगिता अधिक होती है,। वह भाषा अधिक समय तक टिकती है। विकसित होती है। हिंदी भाषा की उपयोगिता और व्यापकता के कारण ही विश्व की हर भाषा में बनायी गयी फिल्म को फिल्मकार हिंदी में डब करना चाहते है। दक्षिण की अनेक फिल्में हिंदी में डब हुई है। अनेक विदेशी फिल्में भी हिंदी अनुदित हुई है और हो रही है। हिंदी फिल्मों के कारण ही तो भाषा को भी नये अयाम मिले है। हिंदी भाषा देश के कोने-कोने में और विदेशो में पहुँच गयी है। इस सन्दर्भ में अर्चना गौतम लिखती है - '' अखिल भारतीय स्तर पर फिल्मों के माध्यम से अहिन्दी भाषी क्षेत्र में हिंदी का अविराम विकास हुआ और लोकप्रियता थी बढी।'' (७) दक्षिण भारत में जीन लोगों ने हिंदी का विरोध किया था वे भी हिंदी फिल्में देखने और हिंदी गानों को समझने के लिए हिंदी भाषा सिख रहे हैं। हिंदी फिल्मों के प्रभाव के देख कर अनेक दक्षिण भारतीय कलाकार भी हिंदी फिल्मों मे आ गये है जिनमे रजनीकांत, कमल हसन, नागार्जुन, रेखा, जयाप्रदा, श्रीदेवी, कैटरिना कैफ, मिनाक्षी शेषाद्रि, शंकर महादेवन, उदितनारायण आदि।

हिंदी फिल्मों में समाज का यथार्थ चित्रण करने के साथ साथ काल्पनिकता का भी समावेश किया जाता है। फिल्मों का मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनारंजन और कुछ नया अनुभव प्रदान करना होता है। एक अमेरिकन विव्दान के मतानुसार ''फिल्म में चाहे कल्पना की उडान भरी जाती हो, पर उस कल्पना में भी एक ऐसी अनोखी सच्चाई होती है, जो छिपी होती है जिसे लेखक अपनी विशिष्ट शैली के माध्यमसे हमारे सामने लाता है'' (६) वर्तमान हिंदी फिल्मों में भी बुनियादी बातों के साथ साथ ढेर सारी काल्पनिकता का समावेश कर श्रोंताओं का मनांरजन करने के साथ- साथ उन्हें समाज की वास्तविकता से परिचित करना होता है। फिल्मों की इस काल्पनिकता के कारण लेखक हिंदी भाषा को नये-नये आयाम देकर, आंलकारिक भाषा का प्रयोग कर भाषा को प्रगल्भ बनाता है।

सांराश :

हिंदी फिल्मो ने जनता का केवल मनोरंजन ही नहीं किया बल्कि जनता का प्रबोधन भी किया। जनता को चेताया, सत्य-असत्य का परिचय कराया तथा सत्य के मार्ग पर चलने का संदेश दिया। समाज को सन्देश देने के लिए शोषितो के मन में क्रांति की भावना जगाने के लिए फिल्म एक सशक्त माध्यम था। और है। यह प्रबोधन का सबसे बडा माध्यम है। अनेक फिल्मकारां ने फिल्मों के सहारे अपने विचार, अपनी भावनाएँ, अपनी संदेशनाएँ जन-जनतक पहुँचायी। हिंदी भाषा को जन-जन तक पहुँचने में भी फिल्म उद्योग का बडा हाथ रहा है। आज विश्व में हिंदी दूसरे नंबर की भाषा है। इसका श्रेय हिंदी फिल्मों को ही जाता है। अंततः निश्चित हि हिंदी फिल्में हर युग की बदलती परिस्थितियों के साथ साथ भारतीय समाज के हर रूप और रंग को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई है। आज का दौर फिल्मों का ही दौर है। फिल्में ही मुख्य मनोरंजन और ज्ञान-विज्ञान को सम्बध्द करने का कारगर साधन है। फिल्म प्रस्तुतीकरण की शैली में बदलाव अवश्य दिखाई देता है किन्तु इसके केन्द्र में व्यक्ति और समाज के अनास्त संबंध ही रही है। निश्चित रूप से फिल्में समाज को एक नयी सोच दे सकती है।

संदर्भ :-

१) प्रयोजन मूलक हिंदी - डॉ. रमेश 'तरूण - पृ. 202
२) वैविध पत्रिका - अक्टो -डिसें 2018 - पृ. 32
३) साहित्य और सिनेमा - डॉ शहाजहान मणेर पृ. 59
४) सहिल और सिनेमा - डॉ शैलजा भारव्दाज
५) जनसंचार माध्यम एवं पत्रकरिता कल और आज - डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत पृ. 94
६) हिंदी पत्रकरिता और सूचना प्राद्यौगिकी - डॉ. तुकाराम दौड पृ. 26
७) हिंदी फिचर : स्वरूप और विकास सुनिल उहाळे पृ. 53

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

VOL- VI ISSUE-XII DECEMBER 2019 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 5.707 ISSN 2349-638x

''आर्थिक विकास में लघु वनोपज के योगदान का आर्थिक विश्लेषण''
(सिंगरौली जिले के विशेष संदर्भ में)

सुचेता सिंह
शोधार्थी, अर्थशास्त्र
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण मध्यप्रदेश अपनी गोद में करोड़ों की संपदा समाहित किये हुये है। वन संपदा में लघुवनोपज एवम् जड़ी बूटियों की भूमिका दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विदेशों में इसके प्रति बढ़ता आर्कषण एवं माँग से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का अच्छा स्रोत बनता जा रहा है। म.प्र. लघुवनोपजों की प्रचुर संपदा से पूर्ण होने के कारण राज्य को बहुत अधिक राजस्व प्राप्त होता है। ग्रामीण और आदिवासियों की नियमित आवश्यकताएँ विभिन्न लघुवनोपज से पूर्ण होती है। लघुवनोपज ही आदिवासी अर्थव्यवस्था की मुख्य भूमिका निभाते हैं। लघुवनोपज की बिक्री से मध्यप्रदेश शासन को राजस्व का लगभग १३.६ प्रतिशत प्राप्त होता है जो कि मध्यप्रदेश के राजस्व का बहुत बड़ा भाग है। देश की जनसंख्या के २५ प्रतिशत व्यक्ति लघुवनोपज से संबंधित कार्यों में लगे हुये है। सर्वेक्षणानुसार देश के ३० प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे है। इनमें से अधिकांश आदिवासी वन क्षेत्र में या इसके आसपास निवास कर रहे है। इन आदिवासियों की आवश्यकताएँ और आय का स्रोत वन उपज ही है।

मध्यप्रदेश के आदिवासियों और ग्रामीणों का मुख्य कार्य लघुवनोपज का संग्रहण एवं विपणन है। लगभग जनसंख्या के २५ प्रतिशत लोग लघुवनोपज से संबंधित कार्य में लगे हुये हैं। एक सर्वेक्षणानुसार-लगभग ७० प्रतिशत महिलाएँ और बच्चे तथा २७ प्रतिशत पुरुष लघुवनोपज के संग्रहण, एकत्रीकरण में कार्यरत है। भारतीय वनों में फैली हुई लघुवनोपज उत्पाद की ३००० प्रजातियों के संग्रहण से मनुष्य रोज जीवन-यापन की पूर्ति करते हैं। एक सर्वेक्षणानुसार करीब ७०.७२ प्रतिशत बच्चे तथा २२.२७ प्रतिशत तक प्रौढ़ जिनके पास ५ एकड़ से कम जमीन है, वे लघुवनोपज के कार्य में लगे हैं। आदिवासियों की लगभग ३५ प्रतिशत आय लघुवनोपज से है।

लघुवनोपज से लकड़ी और गोबर मिलते हैं जो आदिवासी क्षेत्र में ऊर्जा का मुख्य स्रोत हैं। लघुवनोपज चिरौंजी के पेड़ की लकड़ी का उपयोग आदिवासी लोग रोशनी के लिए करते हैं। चिरौंजी की लकड़ी तेज लौ के साथ जलती है। जलाऊ लकड़ी की प्रति केपिटा में निर्धारित खपत २८७ के.जी. प्रतिवर्ष से ४५० के.जी. वर्ष के मध्य है। लघुवनोपज (बांस) अखबार और लुगदी बनाने के लिए उद्योगों को संपूर्ण कच्चे माल की पूर्ति करता है। भारत में २००१-०२ में भारत के संतुलन में हानि ५८१३ करोड़ रू. थी जिसका कि १६०.७ करोड़ रू. के पेपर, अखबार, छपाई, बोर्ड, लुगदी, रद्दी पेपर के रूप में आयात किया गया। लघु वनोपजों के दायरे में करोड़ों रूपयों के राजस्व देने वाली तेंदूपत्ती हैं। इसी श्रेणी में बांस जिसे गरीबों का टिम्बर कहते है सम्मिलित है। चिरौंजी, आँवला, हर्रा, भिलावा, गोंद, साल बीच, जड़ी-बूटियाँ, महुआ गुल्ली, घास पत्तियाँ आदि लघुवनोपज है।

भारतीय वन विधान के अंतर्गत परिभाषित वनक्षेत्रों से प्राप्त होने वाली अनेक वनउपजों का प्रयोग देश के अधिकांश ग्रामीण बन्धु तथा आदिवासी श्रमिक अपने जीवकोपार्जन हेतु सदियों से करते आ रहे हैं। इन सशक्त संसाधनों से उपजीविका प्राप्त करने वाले असंख्य गरीब वर्ग के जनमानस इन्हीं के उत्पादन पर निर्भर होते आ रहे हैं। कालचक्र की चपेट में इन लघुवनोपजों के उत्पादन में कमी तो आई है, परन्तु देश की बढ़ती आबादी की जरूरत ने भी इस माँग व पूर्ति के अंतर को अत्यधिक बढ़ा दिया है। निरन्तर गिरती सिकुड़ती उत्पादकता के बाद भी लघुवनोपज की संख्या अनगिनत है।

लघुवनोपजों में तेंदूपत्ता से शासन को प्राप्त आय, ग्रामीण एवं आदिवासियों को रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण वनोपज माना गया है। दूसरी महत्वपूर्ण राष्ट्रीयकृत वनोपजें जैसे-हर्रा, साल बीज, गोंद आदि से भी शासन को वर्तमान समय में अच्छी आय तथा आदिवासियों को रोजगार प्राप्त हो रहा है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय-

सिंगरौली जिला मध्यप्रदेश राज्य के उत्तर-पूर्व में है। यह जिला पूर्व में सीधी जिले का एक तहसील मुख्यालय था जो वर्तमान में जिले का दर्जा प्राप्त कर चुका है। यह क्षेत्र कोयला खनन के पूर्व घने वनों से आच्छादित था तथा रीवा राज्य (बघेलखण्ड) का एक प्रमुख भाग था। इस क्षेत्र की दुर्गमता एवं कोयला पत्थर पाये जाने के कारण इसे **काला पानी** के नाम से जाना जाता था। रीवा राज्य में जब किसी को काला पानी की सजा दी जाती थी तब उसे यहाँ के जंगलों में छोड़ दिया जाता था। सिंगरौली के नाम के बारे में मान्यता है कि **श्रृंगी ऋषि** ने यहाँ घनघोर वनों में घोर तपस्या की थी और श्रृंगी के नाम से ही इस क्षेत्र का नाम **सिंगरौली** पड़ा। पौराणिक मान्यता है कि इस क्षेत्र में अज्ञातवास के समय **पाडवों** ने कुछ समय मान्डा की गुफाओं में व्यतीत किया था। यह गुफायें आज भी मौजूद हैं। मान्डा की गुफायें सिंगरौली मुख्यालय से ३० किमी. दूरी पर स्थित है।

सिंगरौली जिले की स्थिति २३°४४' उत्तरी अक्षांश से २४°.१२' उत्तरी अक्षांश तक तथा ८१°.४८' पूर्वी देशान्तर से ८२°.१२ पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। सिंगरौली क्षेत्र का विस्तार लगभग २२०० वर्ग किमी. क्षेत्र में पाया जाता है। सिंगरौली जिला बनने के पूर्व यह क्षेत्र सीधी जिले का एक तहसील था। सिंगरौली जिले के उत्तर तथा पश्चिम में सीधी जिला, पूर्व में उत्तरप्रदेश राज्य का सोनभद्र जिला, दक्षिण में छत्तीसगढ़ राज्य का कोरिया जिला स्थित है। यहाँ का विशाल कोयला क्षेत्र १०३ किमी. लम्बाई एवं ४८ किमी. चौड़ाई में विस्तृत है।

अध्ययन का उद्देश्य-

किसी भी शोध परक अध्ययन के लिये उद्देश्यो का पूर्व निर्धारण महत्वपूर्ण होता है, उद्देश्य के निर्धारण के विना अध्ययन वैज्ञानिक नहीं होता अतः उद्देश्य का निर्धारण अनिवार्य है वस्तुतः पर्यावरण एवं परिस्थितिकी संतुलन में एवं आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में तथा लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार उपलब्ध कराने में वन एवं वनोपज की महत्वपूर्ण भूमिका है। फिर भी सिंगरौली जिले के वनों की स्थिति अच्छी ना होना विरोधाभास को जन्म देता है। सिंगरौली जिला जो प्रकृति का एक और उपहार प्राप्त है।

वनों का विनाश पर्यावरण प्रदूषण एवं पारिस्थितिकी तंत्र के असंतुलन जैसी अवस्था को उत्पन्न किया है। पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र को विनाश से बचाने के लिये हर मानवीय जीव को वन विकास के प्रति समर्पित होना पड़ेगा। प्रस्तुत अध्ययन सिंगरौली जिले के आर्थिक विकास में लघु-वनोंपज के योगदान से संबंधित विभिन्न तथ्यों का उद्घाटन करने के लियें आवश्यक मूल-भूत उद्देश्यों पर निर्भर है। वस्तुतः किसी भी शोध परक अध्ययन के लिये उद्देश्यों का पूर्व निर्धारण अत्यन्त आवश्यक होता है। जिसके कारण अनुसंधान को दिशा मिलती है उद्देश्यों के पूर्व निर्धारण के बिना अध्ययन वैज्ञानिक नहीं होता अतः प्रस्तुतः शोध अध्ययन में निश्चित किये गये उद्देश्य इस प्रकार है-

१. सिंगरौली जिले के भौगोलिक एवं आर्थिक स्वरूप का आंकलन करना।
२. आर्थिक विकास में लघु-वनोपज के योगदान का मूल्यांकन करना।
३. सिंगरौली जिले में वन, वनोपज, की स्थिति का मूल्यांकन करना।
४. सिंगरौली जिले में लघु-वनोपज का संग्रहण, आय, रोजगार, उपभोग तथा जीवन स्तर से संबंधित क्रियाओं का अध्ययन करना।
५. वन एवं वनोपज पर आधारित उद्योगों के विकास की संभावनाओं को अनुमानित करना।
६. पर्यावरण असंतुलन, प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण दोहन के दुष्प्रभाव एवं मानवीय संचेतना के विकास का अध्ययन करना।
७. वन व्यवस्था तथा औद्योगिक विकास के क्षेत्रीय एवं जिला स्तरीय प्रकृति का मूल्यांकन करना।
८. वनो की प्रकृति एवं विशिष्टताओं का अध्ययन करते हुए वन विकास हेतु उचित नीति निर्धारण का औचित्य प्रतिपादित करना।

९. उद्योगों की स्थापना का अनुसूचित जनजाति तथा उनकी व्यवस्थाओं पर होने वाले प्रभावों का वर्णन करना।
१०. लघु-वनोपज का जटिलता एवं कमियों का अध्ययन करना।
११. वन तथा लघु-वनोपज के विकास के संदर्भ में लागू की गयी योजना कहाँ तक सकारात्मक साबित हो रही है का अध्ययन करना।

वर्तमान आर्थिक सुधार वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण, की अंधी दौड़, में वन और वनउपज को जीविकोपार्जन, और आर्थिक संचालन का आधार मात्र ना मानकर वनों को काट कर, बिक्री से आय प्राप्त कर वाणिज्य, का रूप प्रदान किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में कल्याणकारी और आर्थिक विकास में बाधा है। यही एक सबसे बड़ी स्थानीय क्षेत्र से लेकर सार्वभौमिक समस्या है। जिसे दूर करना आवश्यक है। इस योगदान से शोध अध्ययन का यह विषय आर्थिक विकास में लघु-वनोपज के योगदान का आर्थिक विश्लेषण चुना गया है। क्योंकि लघु-वनोपज के दोहन की अवधारणा, पेड़-पौधों अर्थात (वन) के विकास को सासित करेगी, क्योंकि पेड, पौधें अर्थात (वन) की उपस्थिति से ही, लघु-वनोपज को प्राप्त किया जा सकता है, अतः पेड़-पौधों अर्थात (वन) की उपस्थिति रहेगी, लघु-वनोपज की उपलब्धता रहेगी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी रोजगार प्राप्त होगा, और विगड़ते पर्यावरण में सुधार होगा-इस औचित्य से यह अध्ययन, महत्वपूर्ण है, आवश्यक है।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत शोध अध्ययन में दोनों प्रकार के समंकों का उचित प्रविधि के द्वारा संकलन किया गया है।

प्राथमिक समंक-प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु प्राथमिक समंको का संतुलन, अनुसूचीं के आधार पर सूचनादाता के पास जाकर साक्षात्कार द्वारा प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किया गया है। जैसें तेन्दूपत्तें तुड़ाई की विधि भण्डारण एवं बीड़ी निर्माण, अचार, मुरब्बा निर्माण की विधि एवं निर्माण में लगने वाले उपकरण की कीमत एवं अन्य संसाधनों की लागत साथ उत्पादित वस्तुओं की कुल लागत एवं उत्पादित वस्तु को बेचने के लिये संगठित असंगठित चुने गये बाजार की जानकारी एवं वस्तु को बाजार तक ले जाने के लिये परिवहन की जानकारी, साथा ही वन विभाग के अधिकारी से वन विकास एवं लघु-वनोंपज की उत्पादकता संबधित समंकों को अर्जित किया गया है। साथ ही, आर्थिक विकास की आवश्यकता से संबंधित तथ्यों को अनुसूची के अंतर्गत साक्षात्कार के आधार पर एकत्रीकरण किया गया है। समंको के संकलन हेतु प्रश्नावली का भी प्रयोग किया गया है।

द्वितीयक समंक-प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु द्वितीयक समंकों का भी संकलन किया गया है। द्वितीयक समंकों के संकलन के लिये सार्वजनिक प्रलेखों ;च्नइसपब क्वबनउमदजद्ध के अंतर्गत प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों का प्रयोग किया गया है। प्रकाशित प्रलेख के अंतर्गत सरकारी व गैर-सरकारी संगठन, सांख्यिकी विभाग सिंगरौली, वन मण्डल कार्यालय सिंगरौली, वन संरक्षक कार्यालय सिंगरौली, अन्य संबंधित एजेन्सी के अभिलेख तथा अध्ययन में उपयोगी संदर्भित पुस्तकों से समंकों का संकलन जायेगा, साथ ही प्रकाशित आंकड़े तथा विभिन्न प्रकार की साप्ताहिक, मासिक, अर्द्धवार्षिक, वार्षिक, पत्र, पत्रिकायें, शोध पत्र, संगोष्ठी से अध्ययन हेतु उपयोगी समंकों को संकलित किया गया है। अप्रकाशित प्रलेख के अंतर्गत शोध-प्रबंध का भी अध्ययन किया गया है, तथा आवश्यक समंकों को संकलित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए–

(१) आदिवासियों को रोजगार उपलब्ध कराना।
(२) इससे आदिवासियों को जीवनयापन का साधन प्राप्त होता है।
(३) कुटीर उद्योग एवं लघु उद्योग को आवश्यक कच्चा माल प्राप्त होता है।
(४) पर्यावरण को संतुलित करना।

सिंगरौली जिले के आदिवासियों और ग्रामीणों का मुख्य कार्य लघुवनोपज का संग्रहण एवं विपणन है। लगभग जनसंख्या के २५ प्रतिशत लोग लघुवनोपज से संबंधित कार्य में लगे हुये हैं। एक सर्वेक्षणानुसार-लगभग ७० प्रतिशत महिलाएँ और बच्चे तथा २७ प्रतिशत पुरुष लघुवनोपज के संग्रहण, एकत्रीकरण में कार्यरत है। भारतीय वनों में फैली हुई लघुवनोपज उत्पाद की ३००० प्रजातियों के संग्रहण से मनुष्य रोज जीवन-यापन की पूर्ति करते हैं।

एक सर्वेक्षणानुसार करीब ७०.७२ प्रतिशत बच्चे तथा २२.२७ प्रतिशत तक प्रौढ़ जिनके पास ५ एकड़ से कम जमीन है, वे लघुवनोपज के कार्य में लगे हैं। आदिवासियों की लगभग ३५ प्रतिशत आय लघुवनोपज से है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- अग्रवाल के. एल.-विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूंगोल प्रथम संस्करण, १६८७
- दयाल, पी.-भारतीय आर्थिक समस्यॉए एवं नीतियॉ, लायल बुक डिपो, सरस्वती सदन, ग्वालियर
- जैन, बी.एम.-रिसर्च मैथ्डोलॉजी रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, १६६७
- कुच्छल, सुरेश चन्द्र-भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था, चैतन्य पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, १६७१
- आर्थिक विकास एवं नियोजन-एस.पी.सिंह-एम.चन्द्र कम्पनी लि. रामनगर नई दिल्ली, वर्ष १६६८
- भारतीय अर्थव्यवस्था-रूद्र दत्त के.पी.एम.सुन्दरम्-एम.चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. रामनगर नई दिल्ली, २००१
- ग्रामीण अर्थशास्त्र-डॉ.वी.सी.सिन्हा-साहित्य भवन, आगरा, वर्ष १६८७
- मिश्र, एस.के. एवं पुरी-भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुंबई, १६६०

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VI ISSUE-XII DECEMBER 2019 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 5.707 ISSN 2349-638x

सिंगरौली जिले के आर्थिक विकास में वनोपज का योगदान

सुचेता सिंह
शोधार्थी, अर्थशास्त्र
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

आर्थिक विकास की समृद्धि की अवधारणा में आय के वितरण तथा उसके उपयोग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। इसमें न्यायोचित वितरण अर्थात् साम्यता का समावेस किया जा सके तो उस अवधारणा को आर्थिक विकास कहा जा सकता है। इसलिए आर्थिक विकास कल्याण का बेहतर माप है। क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था के सभी वर्गों का ध्यान रखा जाता है। अतः आर्थिक समृद्धि में उसके गुणात्मक पक्ष का भी ध्यान रखा जा सके तो इसे आर्थिक विकास कहा जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी में उपनिवेशवादी व्यवस्था से स्वतन्त्र हुए राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था पूर्णतः जर्जर थी। इन स्वतंत्र हुए राष्ट्रो की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक विपन्नता, निरक्षरता, बेरोजगारी एवं विकास की थी। औपनिवेशिक स्वतंत्रता के ६-७ दशकों ने यह तो प्रमाणित किया कि लोकतांत्रिक व्यवस्था एक श्रेष्ठतम् व्यवस्था है। इसके साथ ही इन राष्ट्रों में लोकतन्त्र का लोक कल्याणकारी प्रारूप मानव विकास की दृष्टि से श्रेष्ठतम प्रारूप था। अल्प विकसित और अविकसित राष्ट्रों का मुख्य फोकस ग्रामीण विकास तथा मानवीय संसाधन को विकास की मुख्य धारा से जोड़ना रहा है। स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को विशेष गति मिली। १९५२ में प्रारम्भ की गयी योजना सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा योजना आयोग द्वारा समग्र राष्ट्रीय विकास सम्बन्धित योजनाएँ, परियोजनाएँ तथा विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रारम्भ हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं ने कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उर्जा, गरीबी उन्मूलन, ग्राम विकास, सामाजिक कल्याण तथा विकास से सम्बन्धित लगभग समस्त क्षेत्रों को विकास की प्रक्रिया से जोड़े जाने का प्रयास शुरू किया। स्वतंत्र भारत का एक प्रमुख नारा-**"सबको रोटी सबको काम"** स्वाधीन भारत की लगभग सभी सरकारों द्वारा बुलन्द किया गया है और ये नारे एवं शासन के प्रयास निष्फल नहीं रहे। इनका सकारात्मक प्रभाव सामाजिक व्यवस्था पर पड़ा किन्तु जनसंख्या विस्फोट के दबाव, संकुचित होते हुए सार्वजनिक क्षेत्र, रोजगार सृजन के प्रयासों को अपेक्षित गति नहीं दे सके। फलतः ६-७ दशक बाद भी **'सबको रोटी सबको काम'** का स्वप्न पूर्णतः साकार नहीं हो सका है। समस्त प्रकार की शासन व्यवस्थाओं तथा प्रशासनिक प्रणालियों में मानव विकास को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है। आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों का दर्शन, चिंतन तथा प्रयास पूर्णतः मानव संसाधन विकास को समर्पित हैं। क्योंकि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के बिना राज्य के विकास या सरकार के अस्तित्व की कल्पना व्यर्थ है।

भारतीय संदर्भ में ग्रामीण विकास का अध्ययन एक स्वाभाविक एवं रूचिकर प्रवृत्ति है। भारतीय नियोजन प्रक्रिया में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इस दिशा में १९५० के दशक के आरम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ करके एक अच्छी शुरूआत की गई इस कार्यक्रम में आधारभूत स्तर पर जो बुनियादी सेवाओं को विस्तार एवं विकासगत सेवाओं का जाल स्थापित किया गया जो गाँवों में चेतना सृजित करके एक ग्रामीण समुदाय के संभाव्य मॉडल को विकसित करने का माध्यम सिद्ध हुआ बाद में आगामी पंचवर्षीय योजना में त्वरित गति से होने वाले विनियोग से दूरदराज के गाँवों में तीव्र गति से सामाजिकार्थिक परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक भौतिक एवं संस्थागत आधार संरचना का निर्माण हुआ। बाद में जब यह महसूस हुआ कि विभिन्न विकासगत कार्यक्रमों का लाभ उन लोगों द्वारा ही प्राप्त किया गया जिनके पास भूमि-संसाधन अधिक मात्रा में थी, तो १९७० के दशक में लघु सीमान्त तथा भूमिहीन श्रमिकों के लिए विशेष तौर पर कार्यक्रम बनाए गए।

भारत एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला विकासशील देश है। भारत की कुल जनसंख्या का लगभग ७० प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। कृषि की मानसून पर निर्भरता एवं उसका उन्नत स्वरूप का न होना आय एवं रोजगार की समस्या उत्पन्न करता है। कृषि भूमि के असमान वितरण से आय में असमानताएँ बढ़ी हैं। इस प्रकार वर्तमान भारत के आर्थिक विकास में गरीबी एक

मुख्य अवरोध है। यह गरीबी अशिक्षा, जनसंख्या वृद्धि, कुपोषण का कारण बनकर विकास के दुष्चक्र को परिभाषित करती है। गरीबी कालांतर में संचयी प्रभाव के कारण और अधिक घातक हो जाती है।

सिंगरौली जिले में वनों का विकास–

वन अर्थात फॉरेस्ट शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के **फेटिश** शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है बाहरी अर्थात गाँव की बाहरी सीमा में लगे हुये स्थान से है। जिसमें बसी हुई भूमि अतः राजस्व भूमि सम्मिलित न हो अर्थात वन से हमारा अभिप्राय ऐसी भूमि व क्षेत्र से है। जहाँ फसल नहीं बोई जाती है और इसका प्रबंधन और संरक्षण वन विभाग के द्वारा किया जाता है। **"एक उगता हुआ वृक्ष राष्ट्र की प्रगति का जीवन प्रतीक होता है। एक वृक्ष को काट डालना आसान है, परन्तु उसे उगाने में एक पीढ़ी गुजर जाती है।"** वन वास्तव में प्रकृति के द्वारा दिया गया एक निःशुल्क उपहार है, क्योंकि भौतिक संरचना, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य प्राणी के भौतिक विन्यास जैसे-स्थिति, आकार, संरचना और उच्चावच जलवायु की दशाओं ने हमारी मानस के मूल लक्षणों को प्रभावित किया है और इस प्रकार अनुकूल पर्यावरण में ही जीवन का विकास होता है और अनुकूल पर्यावरण का आधार वन को ही माना गया है क्योंकि मनुष्य एवं वनों का सम्बन्ध काफी प्राचीन काल से रहा है तथा इन्हीं को मानवीय सभ्यता तथा आर्थिक विकास का आधार माना जाता है। प्राचीनकाल में जब मनुष्य आदिम अवस्था में था, तब पृथ्वी का अधिकांश भाग वनों से आच्छादित था, परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ती गई, जनसंख्या बढ़ती गई, मनुष्य सभ्य होता गया, गाँवों एवं शहरों का निर्माण हुआ तथा यातायात के साधनों का विकास हुआ, इन उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिये वृक्षों की कटाई का कार्य प्रारम्भ होने लगा, जिससे धीरे-धीरे वनों का ह्रास प्रारंभ हो गया और मनुष्य यह भूल गया कि–**"वन ही जीवन है।"**

सिंगरौली जिले में वनों से प्राप्त होने वाले वनोत्पाद के रख-रखाव और सुरक्षा के लिए व्यापक स्तर पर प्रबंध किए जाते हैं। वृक्षों के वृद्धि, उजड़े वनों के रोपण, सघन वन क्षेत्र में पहुँचने के लिए मार्ग निर्माण, दूषित वनों की कटाई, वन सुरक्षा व्यवस्थापन आदि विभिन्न कार्य ऐसे हैं जिनकी प्रतिमूर्ति के लिए विभिन्न मुकामों में व्यय किया जाता है। वन क्षेत्र को आकर्षक बनाने के लिए उद्यानों के रूप में उनका विकास, क्षेत्र विशेष का चयन कर वहाँ विलुप्त होते वन पशु-पक्षियों और पेड़ पौधों का संवर्धन करना आदि के लिए उत्थानात्मक कार्य योजनाओं को तैयार कर कार्य रूप में परिणित करने के लिए धनराशि की जरूरत पड़ती है। वनों से संबंधित विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में किया गया खर्च किए गए वनों का आंकलन वन क्षेत्र में भौगोलिक वर्गीकरण के आधार पर किया जा सकता है। सिंगरौली जिले के वन क्षेत्र के रख-रखाव और संवर्धन के लिए किए जाने वाले व्यय का विस्तृत विवरण वनमंडल द्वारा तैयार की गयी कार्य योजना पुस्तिका में उपलब्ध है, कार्य योजना पुस्तिका जिसका प्रारूप वन विभाग के वरिष्ठ और अनुभवी अधिकारियों कर्मचारियों के द्वारा तैयार किया जाता है, में विभिन्न महत्वपूर्ण बिन्दुओं को चिन्हित कर उनमें किया गया खर्च का विवरण सन्निहित किया जाता है।

सिंगरौली जिले में वनों का योजनाबद्ध विकास–

राष्ट्रीय वन नीति १८५२ के आधार पर सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विकास के लिए कार्यक्रम तैयार किये बल्कि पंचवर्षीय योजनाओं में वनों के विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए गये हैं। १६५० में अधिक वृक्ष लगाओं कार्यक्रम प्रारंभ किया गया जिसे **'वन महोत्सव'** का नाम दिया गया। वह कार्यक्रम प्रतिवर्ष १ जुलाई से ७ जुलाई तक पूरे देश में मनाया जाता है वनों के सन्दर्भ में शिक्षा और अनुसंधान कार्य के लिए देहरादून में 'वन अनुसंधान संस्थान' स्थापित किया गया। यह संस्थान वन विभाग के कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है। नवम्बर, १६७८ में घोषित नवीन वन नीति में पर्यावरण संरक्षण, वन क्षेत्र में वृद्धि तथा नहरों सड़कों और रेलमार्ग के किनारे वृक्ष लगाने पर विशेष बल दिया गया है। वन भूमि को अन्य प्रयोगों में प्रयुक्त करने से रोकने के लिए वन संरक्षण अधिनियम १६८० लागू किया गया। सामाजिक बानिकी के माध्यम से समाज में व्यर्थ पड़ी भूमियों, बंजर जमीनों में वृक्षारोपण का कार्य किया जा कर वृक्ष खेती को अत्यन्त महत्व दिया जा रहा है।

सिंगरौली जिले के वन आधारित उद्योग राज्य सरकार एवं वन उपज भोपाल से प्राप्त होने वाली राशि से वन उपज का संग्रहण समितियों के माध्यम से कराया जाता है। इस कार्य के लिये समितियों को कमीशन राशि दी

जाती है। जैसे तेंदूपत्ता संग्रहण किये जाने पर समितियों को १५.०० रूपया प्रति हजार तेदूपत्ता गड्डी के मान से कमीशन का भुगतान किया जाता है। वन उपज का विक्रय शासन द्वारा किया जाता है। विक्रय उपरान्त प्राप्त लाभांश राशि का ६० प्रतिशत बोनस के रूप में समितियों को प्राप्त होती हैं जो अपने सदस्यों को वितरित करती हैं। केन्द्र शासन से गोदामों के निर्माण हेतु अनुदान प्राप्त राशि से गोदामों का निर्माण समिति द्वारा कराया जाता हैं। निर्मित गोदामों में तेदूपत्ता का भण्डारण होने पर समितियों को गोदाम किराया २१.०० प्रति वास्तविक बोरा प्रति माह प्राप्त होता है। वन उपज के सग्रहण हेतु समितियों को मिलने वाली कमीशनन राशि १५.०० प्रति बोरा से ही समिति अपने सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यय वाहन करती है। इस प्रकार से वन आधारित उद्योग से प्रमुख आय उपरोक्त ही है और इस कमीशन राशि से ही वन विभाग को आय प्राप्त होती है।

वन आधारित उद्योग क्षेत्र में केन्द्र सरकार सीधे कोई भी अनुदान नही भेजती है, न ही इसकी कोई सहायता प्राप्त होती है। इसके लिए मध्य प्रदेश सरकार जब वन विभाग के योजनाओं एव विकास सम्बधी प्रोजेक्ट को बनाकर भेजती है एवं उन प्रोजेक्ट में पूरा वन विभाग के द्वारा जो योजना के नये प्रस्ताव, बनाकर केन्द्र सरकार को भेजा जाता है तब कहीं केन्द्र सरकार वन विभाग अर्थात उनके द्वारा बनाई गई योजनाओं पर बजट भेजती है। इस प्रकार से वन विभाग को केन्द्र सरकार से अनुदान प्राप्त होता है। इसी प्रकार से राज्य सरकार भी उसी बजट को मध्य प्रदेश के अन्य जिलों में विकास के लिए राशि भेजती है। वन विभाग को पूरी वित्त व्यवस्था एवं अनुदान एवं अन्य सहायता राज्य व केन्द्र सरकार देती हैं। उसी राशि से वन विभाग विकास कार्य करती हैं।

संदर्भ–

१. दीक्षित जी.आर.– जुलाई-सि. १९९१ – ८, मानवीय पूँजी के विकास की गति की खोज तथा परातत्वी खोज में स्थानीय वनस्पतियों का योगदान्– ”वानिकी संदेश“ राज्य वन अनुसंधान संस्थान जबलपुर–१९९१

२ पुरोहित डॉ. ममता १९९६–१९, कुरंज (लघुवनोपज) के असामान्य पौधों का अध्ययन्–”वानिकी संदेश“ राज्य वन अनुसंधान संस्थान जबलपुर–१९९६–गग. (२) पेज नं. १९ से २२. बोहरा एन.के. १९९६–२०. नीम आधुनिक परिप्रेक्ष में–”वानिकी संदेश“ राज्य वन अनुसंधान संस्थान जबलपुर

३ मार्डीकर पी.एस.–१९९४–२१, ईसवगोल (लघुवनोपज) का अध्ययन– ”वानिकी संदेश“ राज्य वन् अनुसंधान संस्थान् जबलपुर– १९९४

४ तिर्की–किरणज्योति १९९८– २२, ”म.प्र. वानिकी नीति एवं जनजाति का विकास“ १९९८

५ जगनाराण–नवम्बर– २००६–२३, औषधीय एवं पोषक तत्वों का भण्डार–मशरूम ”योजना“ योजना भवन नयी दिल्ली–वर्ष– २००६, अंक ८

६ प्रकाश गर्ग– २००२, ”वन आधारित उद्योगों का विकास और संभावनाएं“ म.प्र. के विशेष संदर्भ में“ सामाजिक सहयोग राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका, २००२

७ तिवारी– डॉ. डी.एन. ”वनों का मनमोहक संसार“, भारतीय अनुसंधान परिषद–१९९१

८ उपाध्याय, प्रो. विजय शंकर एवं पाण्डेय डॉ. गया ”जनजाति जंगल“ जनजाति विकास म.प्र. हिन्दी ग्रंथ आकादमी–२००२

९ इंदुरकर डॉ. पी.–”फारेस्ट्री इनवायरमेंट एण्ड इकोनॉमिक्स डवलपमेंट“ आशीष पब्लिशिंग हाउस १९९२.

साहित्य में किसान जीवन की त्रासदी

प्रा.डॉ.ठाकुर व्ही.सी.

साहित्य यात्रा में उपन्यास परम्परा का बड़ा महत्व पूर्ण स्थान हैं| भारतेंदु युग में बंगला उपन्यास का प्रभाव रहा| द्विवेदी युग में 'परीक्षा गुरु' से 'भाग्यवती' १९३६ से १९४७ के कालखण्ड को आधुनिक काल के उत्तरार्ध को मानते हैं| ऐसा माना जाता है कि प्रेमचंद के पूर्व कृषक जीवन जीनेवाले किसान के जीवन को रेख्नाकित करनेवाले बहुत बड़े पैमाने पर कोई रचनादेखने को नहीं मिलती| लेकिन यह भी सच हैं कि, १९०८ में द्विवेदी युग में क्या महावीर प्रसाद ने अर्थ शास्त्र पर आधारित 'सम्पत्तिशास्त्र' पुस्तक वही लिखी थी ? इस पुस्तक में कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित परेशानी, यातना नुकसान, किसान कि तबाही का जीता-जागता चित्रण किया गया था| इस निबंध में अंग्रेजों पर सरकार भी थी कि, हिन्दू स्थान की जमीन रहकर भी अंगेज लोग(सरकार) महसूल के नाते शोषण करते हैं| साम्राज्य के विरोधी और सामन्ती विरोधी दोनों विरोधों के प्रकारों को हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग अच्छी तरह जनता हैं पहचानता हैं|

आचार्य द्विवेदी ने कहा था, " हमारी ७० प्रतिशत आबादी किसानों की हैं| कई जगहों पर महवीर प्रसाद मजदूरों और किसानों को मिलकर लड़ने की बात करते हैं| द्विवेदी ने कहा भी था कि यदि कृषक लगान देना बंद करेंगे तो राजा-महाराजाओं के सरकार के शासन कि दुर्गति हो जाएगी| पहली बार 'हंस' पत्रिका में प्रेमचंद ने 'महाजनी सभ्यता'इस लम्बे लेख में कहते हैं कि " हमारा समाज दो भागों में बंटा हसा हैं, एक खेत-खलियान में मरने-खपनेवाला है दूसरा बहुत छोटा हिंसा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति प्रभाव के कारण एक बड़े समुदाय को अपने वश में किए हुए हैं| क्या आज भी देश आजादी के ७०-७५ साल हो गये हैं| दो भागों में बंटा हुआ समाज नहीं दिखाई देता| आज किसानों की आत्महत्याओं को रोकनेवाला कोई मसीहा हैं| सब अपने-अपने स्वार्थ के गटजोड़ में व्यस्त हैं|

प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को कलात्मकता तथा जन जीवन की समस्याओं से जोड़ा| प्रेमचंद जिस क्षेत्र के किसान समाज का चित्रण कर रहे थे, वहीं जमींदारी प्रथा थी| किसानों के शोषण का यथार्थ चित्रण प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' में प्रस्तुत किया गया हैं| इस उपन्यास में समस्या भी है और हल भी स्वाधीनता आंदोलन को दूर करने के लिए उसे एक नई गति देणे के लिए किसान समस्याओं को आजादी की मूल समस्या के रूप में स्वीकार करने में बहुत बड़ा काम किया हैं|

पुलीस और साम्राज्यवाद के अन्य यंत्रों द्वारा सामंती व्यवस्था को किस तरह क्षति पहुँचाता हैं, इसका भी चित्र इन्होने इस उपन्यास में बड़े अच्छे ढंग से बताया हैं| 'कर्मभूमि' में तो जमीन की समस्या हैं| लगान कम करने की समस्या हैं| इस उपन्यास में भी जनता की साम्राज्य विरोधी भावना को रेखांकित किया हैं| कृषि प्रधान गाँव को उजाड़ कर औद्योगिक केंद्र बनाने में भारत के राज्यों तथा राजाओं ने अंग्रेजों का किस प्रकार साथ दिया है| इसको भी दिखाया है| एक भारतीय कृषक कि दीन-हीन दशा का चित्रण प्रेमचंद के गोदान में दिखाई देता हैं| 'होरी' के चित्रण में वे यथार्थवादी दिखाई देते है| किसान के शोषण की समस्या का चित्रण हैं| कड़ी मेहनत, हमेशा परेशानियों का सामना दैन्य अवस्था आकांक्षाओं की आपूर्ति यही होरी का जीवन, हमारे आजाद भारत के किसान का जीवन हैं|

होरी एक जगह कहता हैं कि कर्ज वह मेहमान हैं जो एक बार आने के बाद जाने का नाम नहीं लेता| तीनों स्तरों के किसान प्रेमचंद युग में 'गोदान में दिखाई देते हैं| पहले में जिसके पास जमीन जोतने का अधिकार था| पर खेती नहीं करते थे| दुसरे में किसान थे पर जमीन जोतने का अधिकार नहीं था| दुसरे के खेती पर काम करते थे इन्हें ही खेती हार मजदूर कहा जाता था| तीसरे किसान वे थे जो जिनके पास जमीन जोतने का अधिकार था| वह स्वयं अपने खेती में काम करते थे और लगान देते थे| 'दातादीन' पहले श्रेणी में आनेवाला किसान हैं|

प्रेमचंद परम्परा के उपन्यासकारों में जीवन के बहु आयामी यथार्थ चित्रण को वाणी दी हैं| जिनमें चतुरसेन शास्त्री प्रतापनारायण मिश्र, श्रीवास्तव, वृदावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, भालचंद्र जोशी आदि| श्रमिक वर्ग किस प्रकार अपना भरण-पोषण करता हैं| उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण प्रेमचंद युग में किया हैं| इसी परम्परा को आगे बढ़ानेवाले उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर, रांगेय राघव हैं| जिनके उपन्यासों की कथावस्तु ही किसान के इर्द-गिर्द घुमती हुई हम देख सकते हैं| रांघेय राघव के उपन्यास 'विषाद मठ' में बंगाल दुर्भिक्ष और कलकता शहर के पीड़ित किसानों की स्त्रियाँ अपने बच्चों को सडक पर छोड़ देती हैं| स्वयं कलकता के चकला घरों में अपनी भूख शांत करने के लिए शरण लेती हैं| किसानों

को जमीदारी की गुलामी शोषण, महजान का सूद, मजदूरों भिखारी बन जाना | क्या नहीं हैं इसमें ?

अमृतलाल का महाकाल उपन्यास किसान अपनी धानों फसलों को बे-भाव बेच देते हैं | कपड़ा-लत्ता दो समय का भोजन के लिए अपने आप को बेच देना ? स्वतंत्रा प्राप्ति के बाद किसानों के जीवन से सम्बन्धित उपन्यास लक्ष्मींनारायणलाल जिने 'धरती की आँखे' लिखा था | जिसमें जमीदार और किसान के आपसी सम्बन्धों का चित्रण हैं | नागार्जुन का 'बलचनमा' किसान आंदोलनों को बखूबी से बताया गया हैं | इस उपन्यास में निर्धन खेतिहार, निम्नवर्गीय किसान प्रमुख रूप से हैं | फणीश्वर नाथ रेणु जी का 'मैला आँचल' जमींदारी उन्मूलन, भूमिका समस्या बदलते गाँव का भी चित्रण देखने को मिलता हैं | उनका दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' में स्वाधान्न की समस्या हैं | जिसके कारण हरित क्रांति को खोजना पड़ा हैं | भारत में जब पहली पंचवार्षिक योजना बनी तब कहीं जाकर कृषकों को महत्व दिया गया | हिंदी उपन्यासों में रामदरश मिश्र जी का 'पाने के प्राचीर' है जिसमें बाढ़ और ऋण की समस्या हैं | सुखा को दिखाया गया हैं | ग्रामीण किसानों को निर्धन होते दिखाया हैं | फसल बर्बादी चोरों की लुट क्या कम थी ?

डायरी शैली में लिखा गया विवेकी राय का उपन्यास 'बबूल'भी आज जाता हैं | बाढ़ और सुखों के कारण लोगों को मजदूरी नहीं मिलती हैं| इसी कारण बड़े-बड़े शहरों में किसानों का पलायन होते दिखाई देता हैं | शिवप्रसाद सिंह जी का उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' उत्तर प्रदेश ग्रामीण जीवन के किसानों को अपनी जमीन स्वयं जोतते दिखाया हैं| इसी कड़ी में आ जाता हैं| रामदरश मिश्र का उपन्यास 'जल टूटता हुआ' लिखा गया | इसमें बाढ़ की भयावहता हैं | किसानों की दयनीय ता का चित्रण हैं | जनजातीय खेती करनेवाले किसान शान्ति जी का उपन्यास 'शाल वनों के द्वीप ' जो पहाड़ी मदिया गोड जाति पर आधारित माना जाता हैं| 'धरती धन न अपना' किसानो के हाथ होते है | कर्जों में फंसता जीवन किसानों की दयनीय स्थिति 'भूमिहीन मजदूर कभी न छोड़े खेत की कथा, अर्ध सामंती समाज के किसान जीवन के बिखरते तानों-बानों का चित्रण है | 'मुट्ठी बहर कांकर' उपन्यास में शरणार्थियों को बसने के लिए खेती का उपजाऊ जमीन का अधिग्रहण हैं | घास गोदाम में शहर के करीब के गाँव का उजड़ना भैरव प्रसाद गुप्त का उपन्यास 'गंगा मैया सती मैया' जमीदारों को और किसानों का संघर्ष चित्रण हैं|

राही मासूम रजा का उपन्यास 'आधागाँव' में किसानो के बिखरते जीवन का चित्रण हैं | अज भारतीय कृषि और किसान दोनों संकट ग्रस्त नजर आते हैं| आज का होरी आये दिन आत्महत्या कर रहा हैं | पूंजीपतियों ने और बिल्डरों ने अपने स्वार्थ के लीये जमीनों का अधिग्रहण बढ़ाया हैं | स्मार्ट सिटी के नाम पर खेत-खलियान बेचे जा रहे हैं | साहित्य में किसान/ मजदूर के जगह बड़ेबड़े विमर्श पनपने लगे हैं | शोषण करने वाले की चलती दिखाई दे रही हैं | शोषकों की आवाजे दबाई जा रही हैं | वीरेंद्र जैन ने 'डूब' उपन्यास लिखा | बेदखल, वाहीघर श्याम बिहारी का उपन्यास 'पेल' में पालम जिले का आकाल का चित्रण हैं | जिस काल का उपन्यास 'एक बीघा जमीन' में चकबंदी और सीमांत की कथा हैं| कुर्मेदू शिशिर का उपन्यास 'बहुतल्पीराह' २००३ बहुत चर्चित रहा | भूमिहीन खेतिहर मजदर म्हणतो की व्यथा हैं |

राजू शर्मा ने 'हलफना में' उपन्यास लिखा | किसान आत्महत्या के साथ जलसंकट चित्रण इसमें हैं|म सूर्यदीन यादव के ' जमीन' उपन्यास में जमीन आधार बनाकर दो अंचल का चित्रण दिखाया हैं | 'माँ का आंचल ' को तो गुजरती साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हैं (१९९२) | इसमें किसान जीवन की विडम्बना हैं | शिवमूर्ति ने आखिरी छलांग में उदारीकरण के नीतियों ने किसानों को किस प्रकार बर्बाद किया हैं | सुनील चतुर्वेदी ने उपन्यास 'कालीचाट' में खेती का कम्पनी कारण को दिखया हैं | कर्ज आत्महत्या, बाजारवाद, बिचौलियों का चित्रण इसमें हैं | संजीव का उपन्यास 'फांस' विदर्भ किसानों की आत्महत्या चित्रण हैं | पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकला में उत्सव' कर्ज की समस्या हैं |

उपन्यासों में कृषकों की समस्याओं आर दयनीय कृषको का बोल-बाला कभी कम होने नहीं दिखाई दे रहा हैं |

संदर्भ–

१. हिंदी साहित्य : उदभव विकास –महावीर प्रसाद द्विवेदी
२. प्रेमचंद-गोदान
३. नागार्जुन-बलचनमा
४. प्रेमचंद उनका युग–रामविलास शर्मा
५. पांडये मैनेजर– हिदी निदेशालय, दिल्ली

मुगलकालीन शिक्षा नीति का सामाजिक मूल्यांकन

सैय्यद मुजाहिद सैय्यद बासित
संशोधक विद्यार्थी इतिहास विभाग
डॉ. कविता आर.तातेड
इतिहास विभागाध्यक्ष,
लो.ना.बा. अणे महिला महा. यवतमाल

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति शिक्षा पद्धती के स्तरपर निर्भर करती है। यदि उचित शिक्षा की व्यवस्था जनसाधारण के लिए होगी तो जनता का सुसंस्कृत होना स्वाभाविक ही है। मुगल काल मे शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था जिसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर भी दिखाई देता है। इस युग में शिक्षा का मुख्य उद्देश प्रत्येक मुसलमान को शिक्षा प्रदन करना इस्लाम का प्रचार करना, भौतिक सुख प्राप्तकरना तथा राजनीतिक वर्चस्व को बनाये रखन था।

मुगलकाल में हिन्दु एवं मुस्लीम शिक्षा नीति मे पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है। डॉ. युसूफ हुसैन के अनुसार मध्ययुगमें लोगों के सोचने तथा अभिव्यक्ति का दृष्टिकोण मजहबी था। राजनीति दर्शन और शिक्षा महजबी नियंत्रण में थे और उन्हे महजबी परिभाषाओं के अनुकूल बना लिया था। अत: इस्लामी शिक्षा केन्द्रो का मुख्य् उद्देश इस्लाम का प्रचार करना व उन्हें सुदृढ बनाना था। मुगल काल में हिन्दु शिक्षा संस्थानों को आक्रमणकारियोद्वारा क्षति पहुँचाये जाने से हिन्दुओं के प्राचीन शिक्षा केंद्र लगभग नष्ट हो चुके थे।

१) शिक्षा का स्वरूप :

इस समय भारत में आये विदेशी यात्रीयों के विवरणों से मुगलकालीन प्राथमिक शिक्षा की जानकारी मिलती है। प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र मकतब कलहाते थे जिनमें बच्चो को प्रारंभ से कुरान पढाया जाता था। जिस से उन्हे इस्लाम के सिद्धांतो की जानकारी प्राप्त हो सके। जनसाधारण के बच्चे इन मकतबो में शिक्षा प्राप्त करते थे जबकि उच्चवर्गीय, राजपरिवार के बच्चों के लिए अलग से अध्यापक की नियुक्ती कर शिक्षा दिलाई जाती थी। इसके अतिरिक्त खानकाह, दहगाह में भी शिक्षा दी जाती थी। प्रारंभिक शिक्षा सामन्यत: ५–६ वर्ष की उम्र में बिस्मिल्लाह की रस्म से प्रारंभ की जाती थी। मकतब में प्रारंभिक भाषा परिचय के साथ विद्यार्थी को पाठांतर के माध्यम से कुरान कंठस्थ कराया जाता था। अर्थात कुरान के अध्ययन के पश्चात गुलीस्तान एवं फिरदौसी के काव्यों को पढाया जाता था।

मुगल काल में उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्र मदरसे होते थे। इनमें व्याख्यानों के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी। मदरसों में अध्यापकों की नियुक्ति सरकारद्वारा की जाती थी। मदरसों का संचालन सरकार तथा अमीर लोगों द्वारा प्राप्त अनुदान से किया जाता था। इस युग में हिंदु शिक्षण संस्थाओं में पाठशाला, विद्यालय एवं गुरूशाला का प्रचलन था। पाठशाला में प्रारंभिक शिक्षा तथा गुरूशालाएँ साहित्य की शिक्षा देती थी। प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था संपूर्ण देश में थी किन्तु उच्च शिक्षा की व्यवस्था प्रमुख शहरों में ही दिखाई देती है जिनमें आगरा, दिल्ली, जौनपूर, लाहौर, फतेहपूर, सीकरी, अंबाला, सियालकोट, ग्वालियर आदिका उल्लेख मिलताहै। इस युग में अध्यापक को उचित सन्मान दिया जाता था। जोअध्यापक ग्रंथ की सहायता के बिना पढाते थे उनकी विद्वत्ता को सम्मानितकिया जाता था। बदायूनी के अनुसार शेख अब्दुल्लाह नामक शिक्षक को किसी भी समस्यापूर्ती के लिए पुस्तक को उपयोग करने की आवश्यकता नही होती थी क्योंकी उन्हें एक बार वे पठन से समस्त पुस्तक याद हो जाती थी। मध्ययुगीन मुगल शासकोने साम्राज्य विस्तार के साथ सांस्कृतिक सामाजिक परंपराओंकी एक मिली जुली संस्कृति का विकास किया। मुगल शासकों ने भारतीय समाज में हिन्दु मुस्लीम समाज की विभिन्नता को कायम करते हुए भी साहित्य, कला के क्षेत्र में समन्वयता को बढावा दिया। अकबर ने मुगल राज्य को सुदृढ बनाने के लिए एक पंथनिरपेक्ष विचारधारा को अपनाया जिसका सर्वोत्कृष्ट रूप सुलहेकुल के रूपमें दिखाई देता है। अत: औरंगजेब के साम्राज्य को छोडकर अन्य मुगल शासकों के राज्य को इतिहासकारों ने सांस्कृतिक राज्य के रूप में संबोधित किया है। यह बात सही है कि इस राज्य में आज के अर्थवाली राष्ट्रीयता का अभाव था किंतु मुगल राज्य ने देश को एकता और अखंडता के सुत्र में पिरोए रखा। इस संदर्भ में मुगलकालीन शिक्षा नीति के सामाजिक प्रभाव को जानने हेतू तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथो का, सरकारी अहवालों का अध्ययन किया गया है।

२) उच्च शिक्षण –

मुगलकाल में उच्च शिक्षा के दो प्रकार थे , एक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा थी इसमें अरबी व्याकरण, साहित्य, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, इतिहास, गणित, ज्योतिष भूगोल, कानून,चिकित्सा,कृषि आदि व्यवहारिक विषयों का अध्ययन किया जाता था। हिन्दू शिक्षा संस्थाओं में भी यह विषय प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से सिखाये जाते थे। दुसरी शिक्षा धार्मिकस्वरूप की होती थी इसमें धर्म व धार्मिक विषयों का अध्यापन कराया जाता था। इसका मुख्य उद्देश धर्म परिवर्तित मुसलमानों को इस्लाम से अवगत कराना था। पर धर्मसहिष्णु सम्राट अकबर ने इस व्यवस्था में परिवर्तन कर हिन्दू एवं मुसलमानों को समान रूपसे शिक्षा दी जाने की व्यवस्था प्रारंभ की थी। मुगल काल में धार्मिक शिक्षा में धर्म को प्राथमिकता दीए जाने से अन्य विषयों का समावेष सीमित मात्रा में होता

था। 'दार–ए–निजलिया' जैसी मुस्लिम शिक्षण संस्था में व्याकरण, अलंकारशास्त्र, हदीस तत्वज्ञान, न्यायशास्त्र, गणितशास्त्र जैसेविषय पढाये जाते थे। हिन्दुओं के संपर्क के पश्चात इस संस्था में नक्षत्रविज्ञान, चिकित्साविज्ञान भी पढाये जाने लगे । तथापि उच्च शिक्षा में पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा राजनिती, भूगोल जैसे विषयों को प्राथमिकता नही दी जाती थी। अत: लागों को भारत की भौगोलिक जानकारी भी नही होती थी अत: इस समय दुनिया का नक्शा देखना यह एक विस्मयकारी घटना मानी जाती थी।

मुगल काल में छात्रों की बुद्धिमत्ता मूल्यमापन करने के लिए कोई नियोजित परीक्षा पद्धती नही होती थी। अध्यापक ही विद्यार्थी को उसकी योग्यता को देखते हुए उसेअगली कक्षा में भेज देते थे। विद्यार्थीयों को उत्साहीत करने के लिए पुरस्कार भी दिये जाते थे। उच्चशिक्षा प्राप्त छात्रों को राजदरबार तथा कार्यालयों में उच्च पद प्रदान किये जाते थे तथा ऐसे छात्रों को 'अमामा' पगडी से सम्मानित किया जाता था। मुगलकाल में मदरसों में शिक्षा लने वाले छात्रों के लिए छात्रावास की व्यवस्था भी होती थी। अर्थात प्राथमिक शिक्षा के लिए छात्रावास की व्यवस्था उपलब्ध नही थी। छात्रावास में सभी सुविधाएँ होती थी जिसके लिए सरकार, धनी व्यक्ति अनुदान देते थे। मुगल काल में शिक्षा को बढावा मिलने के साथ उत्तम ग्रंथालयों का भी निर्माण किया गया। ग्रंथालय में ग्रंथपाल या सहाय्यक कर्मचारी हस्तलिखित पुस्तकों की देखभाल जतन से किया करते थे। इन ग्रंथालयों में ग्रंथो की नकल करने का कार्य भी किया जाता था। आज के समान आधुनिक तकनीक नही होने पर भी ग्रंथो का ज्ञान हस्तलेखन के माध्यमसे आगे बढाये जाता था।

फत्तेपुर सिक्री में अकबर के ग्रंथालय में २४००० ग्रंथ थे जिन्हे भाषा और विषय के अनुरूप व्यवस्थित लगाया गया था। ग्रंथपाल शेख फैजी के मार्गदर्शन में भाषांतर एवं प्रतियाँ बनाने का कार्य किया जाता था। इस समय व्यक्तिगत ग्रंथालय को प्रतिष्ठा का मापदण्ड माना जाने से संस्थानिक, सरदार तथा अमीर लोगों ने भी ग्रंथालयों का विकास किया था। अब्दुल रहीम खाना के ग्रंथालय में ९५ कर्मचारी नियुक्त थे। बहामनी वजीर मुहमूद गांवा के पास ३५००० तथा अकबर के ग्रंथालय का ग्रंथपाल शेख फैजी के व्यक्तिगत ग्रंथालय में ४६०० ग्रंथ थे। गुजरात के कुछ मदरसे अपने ग्रंथसंग्रह के लिये प्रसिद्ध थे जिनमें अहमदाबाद, काठियावाड के मदरसों में भिन्न विषयों के हजारों हस्तलिखित संग्रहित होते थे।

३) नारी शिक्षा :

सल्तनत काल की अपेक्षा मुगल काल में नारीशिक्षा की स्थिती समाधानकारक थी। मुगल काल में स्त्रियों के लिए पुरूषों के समान स्वतंत्र अथवा समानता की शिक्षा नीति प्रचलित नही थी। बालकों के समान बालिकाएँ मकतबों अथवा मदरसों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए नही जा सकती थी। बालिकाओं को मसजिद से संलग्न मकतब में भेजा जाता था।जहाँ उन्हे लिखने, पढने की साधारण शिक्षा प्रदान की जाती थी। उन्हे कुरान का अध्ययन कराया जाता था पर व्यवहरिक शिक्षा नारी के लिए जरुरी नही समझी जाती थी। अमीर परिवार में लडकियों की शिक्षा के लिए घरपरही अध्यापक को नियुक्त किया जाता था। राजकन्याओं, जमीनदारों की कन्याओं को लेखन वाचन कला अवगत होती थी अत: वे अपने रिश्तेदारों से पत्रव्यवहार करती थी। कुछ काव्यरचना भी करती थी पर ये सब व्यवस्था विवाह के पूर्व अपेक्षित थी। विवाह के पश्चात उनकी शिक्षा बंद हो जाती थी। गुलबदन बेगम, झैबुन्निसा, झीनतउन्नीसा के साहित्योंमें व्याकरण की कई त्रुटियाँ दिखाई देती है। मध्यमवर्गीय हिन्दू अथवा मुस्लीम स्त्री को केवल धार्मिक ग्रंथ के वाचन की सीमा तक ही शिक्षा प्रदान की जाती थी। निम्न स्तर की नारियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नही होती थी।

उचित शैक्षणिक व्यवस्था न होने पर भी मुगलकाल में उच्चवर्ग की कुछ विदुषी स्त्रियाँ कला व साहित्य में विशेष अनुराग रखती थी। नुरजहाँ, मीराबाई, जैबुन्निसा, गुलबदनबेगम, जहाँआरा,रूपमती, आकाबाई, कैनाबाई जैसी स्त्रियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपनी योग्यता सिद्ध की थी। पर जनसाधारण स्त्रियाँ घर पर रहकरही धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। इनके लिए स्वतंत्र पाठशाला, मदरसे प्रचलित नही थे। परदाप्रधान के सर्वमान्य प्रचलन के कारण नारी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया था। नारी का कार्यक्षेत्र पुरूषों से सर्वथा भिन्न माने जाने के कारण उससे शिक्षा की अपेक्षा ही नही की गई। पर फिर भी संभ्रात परिवारों में संधी प्राप्त होने पर नारी शिक्षा के अधिकार को प्राप्त कर साहित्यीक क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने में सहाय्यक सिद्ध हुई। हुमायु की भतीजी सलीमा सुल्ताना ने अनेक कविताओं की रचना की, गुलबदन बेगम ने हुमायुननामा लिखकर अपनी साहित्यीक अभिरूची को प्रकट किया। अकबरने स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतू फतेहपूरसीकरी में एक महिला मदरसे की स्थापना की थी। शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा ने एक महिला मदरसे की स्थापना की थी। शहाजहाँ की पुत्री जहाँआरा बेगम उच्चविदुषी थी, जिसकी कब्रपर खुदी हुई कविता उसकी बौद्धिक क्षमता की पुष्टी करती है। इस प्रकार सुल्तनतयुग में केवल रजिया सुल्ताना जैसी एक ही शिक्षित नारी का उदाहरण मिलता है पर मुगलयुग में विभिन्न प्रातों में कई विदुषी स्त्रियों के विवरण से प्रतीत होता है की, नारी शिक्षा का प्रचलन संपत्ती, पद–प्रतिष्ठा के अनुसार परिवार में निर्धारित होता था।

४) मुगल सम्राटों की शिक्षा नीति –

मुगल सम्राट बाबर एवं हुमायु के समय तक मुगल शासकों की शिक्षा नीति सल्तनतयुगीन शिक्षा का अनुकरण करनेवाली पारंपारिक नीति थी। जनसामान्य की शिक्षा नीति में विशेष परिवर्तन न होने पर भी ये दोनो सम्राट साहित्य में विशेषरूची होने से व्यक्तिगत रूपसे फारसी, अरेबिक, तुर्की भाषा के अच्छे जानकार थे। बाबर ने हुमायु के शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की थी। बाबर ने अपनी पुत्रियों के लिये भी स्वतंत्र अध्यापकों की नियुक्ती की थी। पर इस समय अध्यापन की पद्धती जटिल, विघटित और संकीर्ण दिखाई देती है। अकबर ने स्वयं उच्च शिक्षा ग्रहण नही की थी, किन्तु उसे शिक्षा से अपार

लगाव था। इसी कारण अपने शासनकाल में शिक्षा की उन्नति के लिये निरंतर प्रयास अकबर द्वारा किये गये जिसके शासनकाल में विद्वानों को जागीरे प्रदान की गई व अनुदान दिये गये। अकबर के उदार धार्मिक विचारों का प्रभाव तत्कालीन शिक्षा पर भी पडा। 'आइने अकबरी' में अकबर की शिक्षा नीति के विषय में लिखा गया है– 'प्रत्येक छात्र को नैतिकता, गणित, कृषि, भूमिति, ज्योतिष, शरीरविज्ञान, इतिहास जैसे विषयों की पुस्तकों को पढना चाहिए।' परंपरागत शिक्षा के दोषो को दूर करने के लिए उसने आदेश जारी किये। उसने पाठशालाओं, मदरसों में पढाये जाने वाले विषयों को विस्तृत करने पर बल दिया। अकबरने मदरसों में हिन्दुओं को प्रवेश दिये जाने के भी आदेश दिये जिससे हिन्दू भी इस्लामी, फारसी की शिक्षा ग्रहण कर सके। अत: कहा जा सकता है कि अकबर का काल धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का युग था।

जहाँगीर यथापि स्वयं शिक्षित एवं विद्वान था, किन्तु उसने जनसाधारण की शिक्षा के विकास के लिए बहुत अधिक प्रयत्न नही किए। मदरसों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए जहाँगीर ने कानून बनाया कि सन्तानविहीन व्यक्ति की मृत्युपर उसकी सम्पत्ति मदरसों को दान कर दी जाये। जहाँगीर एवं शहाजहाँ ने अनेक विद्वानों को आश्रय दिया तथा मदरसों का निर्माणभी कराया। शहाजहाँ का पुत्र दारा भी अत्यन्त विद्वान था इस कारण विलियम स्लीमन लिखते है की यदि शहाजहाँ के पश्चात दारा सम्राट बना होता तो शिक्षा की अत्याधिक उन्नति हुई होती। सम्राट अकबर के समय अध्यापन पद्धती में भी परिवर्तन किया गया जिसमें विद्यार्थी अध्यापक के बीच उचित तालमेल बनाये जाने पर बल देकर अक्षरज्ञान, शब्दार्थ, श्लोकार्थ एवं पूरनावृत्तीद्वारा कंठस्थ किये गए। अकबर की शिक्षा नीति को उसके उत्तरधिकारियों ने आगे बढाया पर औरंगजेब के समय शिक्षा के विकास का स्वरूप बदल गया। औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति के प्रभाव के फलस्वरूप उसने केवल मुसलमानों के शैक्षणिक विकास के ही प्रयास किये। मुसलमनों को उचित शिक्षा प्रदान करने के लिये उसने मकतबों एवं मदरसों के पाठ्क्रम को अधिकव्यवहारिक बनाया पर हिन्दुओं के प्रति धार्मिक कट्टरता की नीति अपनाकर उसने हिन्दु मंदिरो एवं शिक्षण संस्थाओं को नष्ट करके मस्जीदो व मंदिरो का निर्माण कराया था। औरंगजेब के पश्चात उसके दुर्बल उत्तराधिकारी राजनितिक संगठन बनाये रखने में असफल सिद्ध हुये अत: तत्कालीन शिक्षा का विकास अवरूद्ध हो गया।

५) मुगलकाल में साहित्यिक उन्नति –

अकबर की व्यापक मानव निष्ठा का प्रभाव तत्कालीन समाज और साहित्य दोनो पर गहराई से पडा दिखाई देता है। उसका 'दीने इलाही' सिद्धान्त भी इसी कारण से धार्मिक कम सामाजिक सिद्धान्त ज्यादा बना है। अकबर ने अनेकता में एकता स्थापित करने के संदर्भ में अबुल पैजी द्वारा रामायण, महाभारत, वेदान्त का फारसी अनुवाद करवाया गया। अकबर ने हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों की कट्टरता को त्याग कर दोनों संस्कृतियों मे समन्वय स्थापित करने का जो प्रयास किया, उसकी झलक रामकाव्य औरकृष्णकाव्य में देखी जा सकती है। मुगलकालीन इतिहास लेख में तारीखों के प्रयोगपर ज्यादा जोर दिया जाने लगा। इतिहास पर व्यक्तिगत विचारों और भावनाओं की छाप पडने लगी तथा घटनाओं के समकालीन विवरण पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा। बाबरनामा, तारीख – ए–रशीदी तारीख –ए –शाही, तारीख –ए– अकबरी, आईने अकबरी, तबकात– ए– अकबरी, तुजुक – ए – जहाँगीरी, पादशहानामा, आलमगीरनामा जैसे ग्रंथोसे तत्कालीन शिक्षा नीति की जानकारी मिलती है।

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर स्वयंतुर्की एवं फारसी का बडा विद्वान था। उसने अपनी आत्मकथा तुजुक –ए– बाबरी लिखी जो तुर्की भाषा का उत्कृष्ट ग्रंथ है। बाबर ने एक नयी लिपि शैली का अविष्कार किया जो बाबरी लिपि कहलाई। हुमायु के समय लिखी गयी सबसे प्रसिद्धपुस्तक हप्त अक्लीस है जो खुदामीर की थी। अकबर के शासनकाल में फारसी एवं तुर्की साहित्य की सबसे अधिक उन्नती हुई। अबुल फजल के अनुसार अकबर के दरबार में ५८ श्रेष्ठ कवि थे जिसमें शेख फैजी को राजकवि का दर्जा प्रदान किया गया। अकबर ने एक अनुवाद विभाग की स्थापना की थी जो स्वयं उसकी ही देख रेख में काम करता था। हिन्दु मुस्लिम संस्कृति के समन्वय के लिये तथा देश के बुद्धिजीवियो के लिये साहित्यिक आदान प्रदान हेतु इस विभाग की स्थापना की गई थी। अकबर ने संस्कृत, अरबी, तुर्की औरयुनानी भाषा के ग्रंथो का फारसी में अनुवाद करवाया। अकबर के शासनकाल को हिन्दी कविता का स्वर्णयुग भी कहा जाता है। मलिक मोहम्मद जायसी की पदमावत, संत तुलसीदास की रामचरितमानस, सुरदास की सुरसागर जैसी साहित्यिक संपदाओं के साथ अकबर केदरबार में बीरबल को कविराय की उपाधि से विभूषित किया गया। अकबर ने हिन्दी के साथ संस्कृत को भी राज्याश्रय प्रदान किया। जहाँगीर भी उच्च कोटी का विद्वान एवं समालोचक था, उसने तुजुक– ए–जहाँगिरी नामक आत्मकथा फारसी में लिखी। जहाँगीर एवं शाहजहाँ ने भी विद्वानों को आश्रय देकर अपने पूर्वजो की परंपरा को स्थिर रखा। उन्होंने अपने दरबार में संस्कृत तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों का यथोचित आदर सत्कार किया।

औरंगजेब एक उच्च शिक्षा प्राप्त मुसलमान था जो धर्मशास्त्र एवं न्यायशास्त्र का ज्ञाता था। कविता एवं इतिहास लेखन में उसकी रुचि नही थी। फिर भी पूर्व प्रचलित परंपरा के कारण उसके समय अनेक फारसी ग्रंथो की रचना हुई। पर उसने हिन्दी, संस्कृत साहित्य के प्रतिकोई लगाव नही दिखाया। अत: राजाश्रयके अभाव में प्रादेशिक भाषा का साहित्य, संस्कृत अथवा हिंदी साहित्य का विकास अवरूद्ध हो गया ।

मुल्यमापन –

मुगलकाल को धर्म का युग कहना शायद अनुचित नही होगा लेकिन वास्तवमे मुगल बादशाहोंने धर्म के अंकुश को राजसत्ता परहावी नही होने दिया.

१)मुगलकालीन मुस्लिम एवं हिन्दू शिक्षण संस्थाओं

द्वारा ज्ञानदान की प्रक्रिया निरंतररूप से जारी रही। आज के समान शिक्षा को प्रबल व्यक्तीत्व का उत्तरदायित्व नही दिया गया पर फिर भी शिक्षा के विकासके लिये शासकों द्वारा नियंत्रित रूपसे प्रयास किये गये, जिसमें धनिक, उच्चवर्ग के लोगों की भी सहायता मिलती रही। इस कारण शिक्षा तथा साहित्य का विकास क्रमबद्ध रूप से होता रहा। स्वयंमुगल बादशहा साहित्य तथा इतिहास लेखन में बहुत ज्यादा रूचि लेते थे— बाबरनामा, तुजुके जहाँगीरी इसके प्रमाण है।

मुगलकाल में हिन्दू एवं मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में धार्मिक शिक्षा को अत्याधिक महत्त्व दिया गया जिस के कारण व्यवहारिक, व्यवसायिक शिक्षा की प्रगती नही हो सकी। अत: इसका प्रभाव सामाजिक विकास पर भी दिखाई दिया क्यों कि शिक्षा ही पीढीदर पीढी सामाजिक चेतना,विकास के क्रम को बनाये रख सकती है। धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य रूप दिये जाने से अभ्यासक्रम का स्वरूप संकुचित हो गया। इस दौर की आर्थिक और राजकिनितक स्थिरता ने भी साहित्य के विकास की खास भूमिका निभाई। अकबरनामा,पादशहानामा, आलमगीरनामा मुगल सरकारी इतिहास की बेहतरीन मिसाले है।

२)इतिहास लेखन इस्लाम की शानदार धरोहर रही है। मुगल बादशहोंने अपना इतिहास लिखवाने के लिए उस जमाने के मशहुर इतिहासकारों तथा लेखकों को नियुक्त किया जिनकी पहुच तमाम सरकारी कागजातों तक थी। उनको इतिहास लिखते समय हर प्रकार की सहुलियत दी जाती थी। ऐसी किताबों से लोगों की इतिहास में रूची बढी। इसके अलावा गैरसरकारी इतिहासकार भी थे जिनका काम आलोचना के साथ इतिहास की सेवा करना भी होता था। निजामुद्दीन अहमदकी तबकार ए अकबरी इसी तरह की एक कोशिश है। इस समय कागज की गुणवत्ता तथा जिल्द बांधने के तरीकों में सुधार हुआ जिससे इन रिकार्डो को सुरक्षित रखने में सहायता मिली, इसी वजह से मुगलकालीन ऐतिहासिक स्त्रोत विशाल मात्र में प्राप्त होते है। अकबर तथा उसके उत्तराधिकारी भी भारतीय साहित्य केसंरक्षक बने। मुगलकालीन शिक्षा के सांस्कृतिक प्रभाव के संदर्भ में यह सिद्ध किया जा सकता है कि हिन्दु मुस्लीम एकता के बीज अच्छी तरह से पनप चुके थे। सामाजिक विकास के इस दौर में कला, धर्म, राजनीति, दर्शन तथा साहित्य को शिक्षा क्षेत्रसे जुडने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

मुगलकालीन शिक्षा पद्धती के कारण फारसी भाषा के प्रसार के साथही यहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं जैसे पंजाबी, कश्मीरी, सिंधी, बंगला तथा फारसी के बीच आदान प्रदान होने लगा । पंजाबी पर फारसी भाषा का असर गुरूनानक के कथनों में देखा जा सकता है। पर इस समय हिन्दू समाज में शिक्षा के अधिकारों को विशिष्ट वर्ग तक सीमित किये जाने से सामाजिक विषमता का विकास हुआ था। स्त्रीपुरूष समानताकी विचार दारा को मुगलकालीन शिक्षापद्धती में स्थान नही मिलसका।

मुगलकाल में शैक्षणिक केंद्र के रूप में मंदिर, मस्जिद जैसे धार्मिक संस्थाओं का विकास हुआ जिनपर सामान्य जनता विश्वास करती थी। परंतु इनके माध्यम सेदी जानेवाली शिक्षा को सर्वव्यापी, प्रासंगिक बनाने का प्रयास अकबर को छोडकर अन्य किसी भी मुगल सम्राट द्वारा नही किया गया। अबुल फजल अकबर के दरबार के ३६ प्रमुख संगीतकारों की तालिका देता है। जिसमें हिन्दु— मुस्लीम दोनों सम्मेलित है। अकबर ने संस्कृत एवंप्रांतीय भाषाओं को भी प्रोत्साहन दिया जिसमें भारतीय संस्कृती में एक समृद्ध विविधता का समावेश हुआ.

सामाजिक रूपसे शिक्षा के क्षेत्र में जनता की सहभागिता का प्रमाण नगण्य होने पर भी तत्कालीन शासनकों के द्वारा साहित्य के जतन, वृद्धि के लिये किये गये प्रथाओं से साहित्यिक संपदा में अभिवृद्धी हुई। मुस्लीम शासकों द्वारा धार्मिक असिहष्णुता की नीति का स्वीकार किये जाने पर भी विभिन्न भाषाओं में साहित्यका निर्माण कर विद्वानों को आश्रय देकर उन्होने साहित्यिक विरासत को कायम रखा। इसी कारण मुगलकालीन इतिहास अध्ययन में इस समयके लिखे गये ग्रंथ, विदेशी यात्रियों के विवरण दरबारी कवियोंकी कवितालेखन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

३)हिन्दु मुसलमानों की एक गंगा जमनी संस्कृती कीदिशा में पहला कदम अकबर द्वारा उठाया गया। अकबर के सामाजिक दृष्टिकोण ने भारत में मिली जुली संस्कृती के विकास को बढावा मिला। अटरावी रातो में मुगल सत्ताके पतनोन्मुख हो जाने परभी इस मिली जुली संस्कृती का विकास नही रूका। मुगल कालीन शिक्षा व्यवस्था में लोकसंस्कृती एवं सामाजिक व्यवहारके क्षेत्र में हिन्दु मुसलमानों के बीच विस्तृत और स्थायी आदान प्रदान संभव हो सका। मुगलकाल में हिन्दुओ को मुगल दरबार में सम्मान तथा उच्च पद प्राप्त होने लगे थे। अब राम—रहीम, रामायण और कुरान ही पास नही आये बल्कि हिन्दु — मुसलमान रहनसहन, वेशभूषा, आचार विचार भी पास आ गये थे। हिन्दी का मध्ययुगीन सुफी काव्य इस तथ्यकी पुष्टी करता है। स्वयं जहाँगीर तथा शहाजहाँ ने अकबर की नीतियों का बहुत दूरतक पाठन किया बाद में दाराशिकोह के पतन से सांस्कृतिक विरासत की अमृतधारा को बडा धक्का लगा और औरंगजेब की कट्टरता ने सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर देश का बडा नुकसान किया।

सहाय्यक संदर्भ ग्रंथ —

१) चिटणीस कृ.ना., मध्ययुगीन भारतीय संकल्पना व संस्था, पुणे १९८२
२) जाफर एस.एम., सम कल्चरल ॲसपेक्टस ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पेशावर, १९३९.
३) रशिद ए., सोसायटी ॲन्ड कल्चर इन मिडविव्हेल इंडिया, कलकत्ता, १९६९.
४) श्रीवास्तव ए. मिडविव्हेल इंडियन कल्चर, आगरा, १९६४
५) चिटणीसके. एन., सोशियो एकानामिक ॲसपेक्टस ऑफ मिडव्हेल बेल इंडिया, पूणे १९७४
६) ताराचंद इनफ्ल्यून्स ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, अलाहाबाद, १९४६.
७) हुसैन युसुफ, गिम्पलेसेस ऑफ मिडविव्हेल इंडियन कल्चर, बाम्बे१९५९.
८) इरफान हबीब, दि ॲटलस ऑफ दि मुघल एम्पायर.
९) चौधरी एम.एल., दि. स्टेट ॲन्ड रिलीजन इन मुगल इंडिया, कलकत्ता १९५१
१०) वर्मा एच., मध्यकालीन भारत, आगर, दिल्ली विश्वविद्यालय,१९९९

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com